नये इंटरनेशनल के गठन का सवाल और रिम

विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन एक कठिन दौर से गुजर रहा है। सर्वहारा वर्ग को नेतृत्व देने के लिए आज कोई अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र नहीं है। सर्वहारा वर्ग की कतारें एकजुट नहीं हैं। अलग–अलग देशों में कम्युनिस्ट संगठन एकता की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। मजदूर आंदोलन में फिलहाल उभार का आमतौर पर अभाव है। विश्व–पूंजीवाद का हमला चौतरफा और व्यापक है। इस हमले का जवाब छिटपुट, यदाकदा और बिखरा हुआ है। कम्युनिस्ट कतारों में एकता समय की मांग है। देश के पैमाने पर और अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर एकता की जरूरत हमेशा रही है। लेकिन एकता–एकता चिल्लाने से एकता हासिल नहीं की जा सकती। एकता सर्वप्रथम विचारधारात्मक होगी। यदि सर्वहारा वर्ग को पूंजी के जुए से मुक्ति पानी है तो उसे विचारधारात्मक एकता के आधार पर ही संगठित प्रयास से यह मिल सकती है, अपने–अपने देश के शासक वर्ग के विरूद्ध क्रांतिकारी संघर्षों को आगे बढ़ाते हुए और विश्व–पूंजीवाद के विरूद्ध संघर्ष में अपनी भूमिका निभाकर ही सर्वहारा वर्ग अपने ऐतिहासिक मिशन की ओर बढ़ सकता है। सर्वहारा वर्ग के मिशन को प्राप्त करने के लिए सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद पर आधारित एकता एक जरूरी शर्त है।

सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद पर आधारित एकता शुरू से ही सर्वहारा वर्ग के मुक्ति के संघर्ष का अभिन्न अंग रही है। 'दुनिया के मजदूरो, एक हो!' का नारा आज किसी भी समय की तुलना में ज्यादा प्रासंगिक है। ऐसी स्थिति में, जब पूंजी वैश्विक पैमाने पर काम कर रही हो, तब कारगर तरीके से उसका विरोध वैश्विक पैमाने पर ही हो सकता है। तब, मजदूर वर्ग की अग्रणी कतारों, कम्युनिस्ट पार्टियों/संगठनों को सर्वहारा वर्ग के एक अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। लेकिन सर्वहारा वर्ग के अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र का गठन कब हो, किस प्रक्रिया से हो, कैसी शक्तियों को लेकर हो और यह किन सांगठनिक उसूलों पर आधारित हो, यह विचारणीय विषय हो जाता है।

इस विषय पर समझ स्पष्ट करने के लिए कम्युनिस्ट आंदोलन के अतीत के अनुभवों का समाहार मददगार होगा।

पहले इण्टरनेशनल की स्थापना लंदन में 27 सितम्बर, 1864 को हुई थी। इसकी स्थापना से पहले 1848 में मार्क्स और एंगेल्स कम्युनिस्ट लीग के लिए 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' प्रकाशित कर चुके थे। इसके प्रकाशन के कुछ ही सप्ताह बाद महाद्वीपीय यूरोप में क्रांतियों का सिलसिला शुरू हो गया। फ्रांस में पूंजीपति और मजदूर एक–दूसरे के आमने–सामने मैदान में उतर पड़े। जर्मनी में मजदूर वर्ग ने पूंजीवादी–जनवादी क्रांति में बढ़–चढ़ कर हिस्सेदारी की। क्रांति की पराजय के बाद प्रतिक्रिया का दौर शुरू हुआ। फ्रांस में लुई बोनापार्त की निरंकुश हुकूमत कायम हो गयी। जनवादी और मजदूर अखबारों को बंद कर दिया गया। मजदूर संगठनों को तबाह कर दिया गया। सर्वहारा वर्ग को अपनी शक्तियों को

एकजुट करने की सारी कानूनी संभावनाओं से वंचित कर दिया गया। उसे लिखने, मीटिंग करने और बोलने से सार्वजनिक तौर पर रोक दिया गया। कोलोन में कम्युनिस्ट लीग के सदस्यों के ऊपर षड़यंत्र करने का फर्जी मुकदमा कायम किया गया। पूंजीवादी यूरोप में सिर्फ ब्रिटेन में मजदूर संगठनों पर कोई कानूनी रोक नहीं थी। 1850 का दशक जहां मजदूरों के ऊपर हमलों का दशक था, वहीं यूरोप में पूंजीवादी विकास में लम्बी छलांग का भी दशक था।

1857 तक आते–आते यूरोप के देशों में आर्थिक संकट आ गया। इस आर्थिक संकट से मजदूरों की और अधिक आर्थिक तबाही आ गयी। जगह–जगह मजदूर वर्ग के संघर्ष फूटने लगे। ब्रिटेन के मजदूरों में नयी जागृति आने लगी। अमरीका के गृहयुद्ध में ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा दक्षिण वासी गोरों के पक्ष में हिस्सेदारी करने के विरोध में, भारी संख्या में ब्रिटिश मजदूरों ने विरोध व्यक्त किया। इसी तरह, फ्रांस व, जर्मनी में मजदूरों ने अपने संगठन बनाने और काम की स्थितियों में सुधार के लिए संघर्ष तेज कर दिये। 1853 से 1866 के बीच कम से कम 749 मजदूर संगठन समूचे फ्रांस में अस्तित्व में आये। जर्मनी में भी मजदूरों के संगठन बढ़ने लगे और उनके संघर्षों में तेजी आयी। अंग्रेज और फ्रांसीसी मजदूरों की राजनीतिक जागृति के फलस्वरूप 1862 में लंदन में अंग्रेज और फ्रांसीसी मजदूरों की एकजुटता के लिये 'महान प्रदर्शनी' आयोजित की गयी। इस प्रकार, हम देखते हैं कि 1864 में इण्टरनेशनल के गठन के पहले, मजदूर वर्ग के संगठन बनने और उनके संघर्षों में, नयी लहर पैदा होना शुरू हो गयी थी। इसी के साथ ही, स्पेन, इटली, पोलैंड में जनवादी आंदोलन तेज हो गये थे। इटली में मैजिनी और गैरीबाल्डी के साथ मजदूर वर्ग लड़ रहा था। 1863 में पोलैण्ड में आम बगावत हुई और पोलैण्ड की आम बगावत के समर्थन में फ्रांस और इंग्लैण्ड के मजदूर आ गये थे।

ऐसी ही स्थिति में, पहले इण्टरनेशनल की स्थापना के प्रतिनिधि इकट्ठा हुए। मजदूर वर्ग के इन प्रतिनिधियों में कई रूप–रंग के लोग थे। इनमें ट्रेड–यूनियनवादी व प्रूदोपंथी सहित कई तरह के समाजवादी नीम–हकीम थे। इस इण्टरनेशनल की 'उद्घाटन घोषणा' और नियमावली को तैयार करने की जिम्मेदारी मार्क्स को दी गयी। मार्क्स ने इण्टरनेशनल की नियमावली के शुरू में ही यह कह दिया था कि मजदूर वर्ग की मुक्ति का कार्य खुद वही सम्पन्न करेगा। 'उद्घाटन घोषणा' और नियमावली के तैयार करने के समय से ही इण्टरनेशनल में सर्वहारा विचारधारा को विजातीय विचारधाराओं से संघर्ष करना पड़ा था।

फ्रांस में बोनापार्तवादी निरंकुशता ने मजदूर वर्ग के ऊपर भीषण प्रहार किया । इससे ट्रेड यूनियनों और राजनीतिक संगठन को भारी आघात पहुंचा था। परिणामस्वरूप मजदूरों के बीच पंथों (सम्प्रदायों) को फलने–फूलने की जमीन मिली। ब्लांकीपंथ और प्रूदोंपंथ इसी जमीन में फलें–फूलें। ब्लांकी, जिसका कोई वास्तविक समाजवादी कार्यक्रम नहीं था; वह थोड़े से बहादुर लोगों की तख्तापलट कार्यवाही के जरिये राजसत्ता पर कब्जा करने के लक्ष्य को लेकर काम कर रहा था। जबकि प्रूदोंपंथ मजदूर वर्ग को राजनीतिक संघर्ष से बाहर धकेलकर, अपने विनिमय बैंक स्कीम के तहत उधार देने तथा ऐसी ही योजनाओं को लागू करने के लक्ष्य को लेकर काम कर रहा था। इसी प्रकार, अन्य देशों में तरह–तरह के पंथ काम कर रहे थे। इण्टरनेशनल में ये सारे पंथ और ट्रेड–यूनियनवादी लोग शामिल थे। इण्टरनेशनल को व्यापक मजदूरों का संघर्षशील संगठन बनाने के लिए मार्क्स को तरह–तरह के पंथों से निपटना पड़ा।

1871 में मार्क्स ने इण्टरनेशनल स्थापित करने के उद्देश्य के बारे में एक पत्र में लिखा,

"... **इंटरनेशनल** की स्थापना समाजवादी और अर्द्ध–समाजवादी सम्प्रदायों के स्थान पर संघर्ष के लिए मजदूर वर्ग का एक सच्चा संगठन कायम करने के लिए की गयी थी। उसकी अस्थायी नियमावली तथा उद्‌घाटन–घोषणा इस चीज की एकदम पुष्टि करती है। दूसरी ओर, यदि इतिहास की धारा ने सम्प्रदायवाद को पहले ही चूर–चूर न कर दिया होता तो इंटरनेशनल अपने को कायम नहीं रख सकता था। समाजवादी सम्प्रदायवाद के विकास और असली मजदूर आंदोलन के विकास में सदा से विलोम अनुपात रहा है, जिस अनुपात में एक बढ़ता है, उसी अनुपात में दूसरा घटता है। सम्प्रदायों का उस समय तक (ऐतिहासिक दृष्टि से) औचित्य रहता है, जब तक कि मजदूर वर्ग स्वतंत्र ऐतिहासिक आन्दोलन के लिए परिपक्व नहीं हो जाता। परन्तु ज्यों ही उसमें यह परिपक्वता आ जाती है, त्यों ही सभी सम्प्रदाय सारभूत रूप से प्रतिगामी बन जाते हैं। इतिहास ने सभी जगह जो दिखाया है, उसकी पुनरावृत्ति इंटरनेशनल के इतिहास में भी हुई। जो पुराना पड़ जाता है, वह नव–प्राप्त रूपों के अंदर फिर पैर जमाने तथा अपनी स्थिति कायम करने की कोशिश करता है।

इंटरनेशनल का इतिहास मजदूर वर्ग के वास्तविक आंदोलन के विरूद्ध स्वयं इंटरनेशनल के भीतर अपनी स्थिति कायम रखने की कोशिश करने वाले सम्प्रदायों और सतही प्रयोगों के **खिलाफ जनरल कौंसिल के निरंतर संघर्ष** का इतिहास रहा है। यह संघर्ष **कांग्रेसों** में चलाया जाता था। पर उससे भी कहीं अधिक वह अलग–अलग शाखाओं के साथ जनरल कौंसिल की निजी वार्ताओं में चला करता था।" (फ्रेडरिक बोल्टे को मार्क्स का पत्र, 23 नवम्बर 1871, मार्क्स–एंगेल्स सं. पत्र–व्यवहार (1844–1895), प्र.प्र.मास्को, 1982, हिन्दी संस्करण, पृ.–196.97, जोर मूल में)

एंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र के 1890 की जर्मन संस्करण की भूमिका में प्रथम इंटरनेशनल के गठन के उद्देश्य को बहुत स्पष्ट तरीके से इन शब्दों में व्यक्त किया है,

" 'घोषणा पत्र' का अपना एक अलग इतिहास रहा है। प्रकाशन के समय से ही उसका वैज्ञानिक समाजवाद के हरावलों द्वारा, जिनकी संख्या अभी बिल्कुल ही अधिक न थी, उत्साहपूर्ण स्वागत हुआ (जैसा कि पहली भूमिका में गिनाये गये अनुवादों द्वारा स्पष्ट है); किन्तु थोड़े ही दिनों बाद, जून 1848 में पेरिस के मजदूरों की पराजय से शुरू होने वाली प्रतिक्रिया के साथ वह पृष्ठभूमि में ढकेल दिया गया, और अंत में जब नवम्बर 1852 में कोलोन के कम्युनिस्टों को सजा दी गयी तो वह "कानूनी तौर पर" बहिष्कृत कर दिया गया। फरवरी क्रांति के साथ जिस मजदूर आंदोलन का सूत्रपात हुआ था, उसके सार्वजनिक रंग मंच से ओझल हो जाने के बाद 'घोषणापत्र' भी पृष्ठभूमि में चला गया।

"जब यूरोप के मजदूर वर्ग ने शासक वर्गों की सत्ता के खिलाफ नया हमला बोलने के लिए दुबारा काफी ताकत बटोर ली, तो अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ का आविर्भाव हुआ। उसका

उद्देश्य यूरोप और अमरीका के तमाम जुझारू मजदूर वर्ग को एक विशाल सेना के रूप में एकजुट करना था। इसलिए, संघ 'घोषणा–पत्र' में स्थापित **सिद्धान्तों को प्रस्थान–बिंदु मानकर नहीं चल सकता था।** उसका ऐसा कार्यक्रम होना लाजिमी था जिससे इंग्लैण्ड की ट्रेड–यूनियनों, फ्रांस, बेल्जियम, इटली और स्पेन के प्रूदोंपंथियों तथा जर्मनी के लासालपंथियों के लिये दरवाजा बंद न हो जाय। इस कार्यक्रम को – इण्टरनेशनल की नियमावली के प्राक्कथन को – मार्क्स ने बड़ी खूबी के साथ तैयार किया जिसे बकूनिन और अराजकतावादियों तक ने माना। जहां तक 'घोषणापत्र' में निरूपित सिद्धान्तों की अंतिम विजय का प्रश्न है, मार्क्स ने मजदूर वर्ग के बौद्धिक विकास पर पूर्ण और एकमात्र रूप से भरोसा किया जो सम्मिलित कार्य तथा आपसी वाद–विवाद के फलस्वरूप अवश्यम्भावी है। पूंजी के खिलाफ संघर्ष की घटनाओं और संघर्ष के बराबर उलट–फेर ने, जीत से अधिक हार ने, लड़ाकों के सामने उनकी सर्वव्याधिहर महौषधियों की अपर्याप्तता प्रत्यक्ष कर दी जिन पर वे अभी तक टिके हुए थे और उनके दिमागों को मजदूरों के उद्धार की वास्तविक परिस्थितियों को पूरी तरह समझने के लिए अधिक ग्रहणशील बना दिया। और मार्क्स का विचार सही था..." ('कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' में 1890 में जर्मन, संस्करण की भूमिका, एंगेल्स, मार्क्स–एंगेल्स संकलित रचनायें, खण्ड– 1, भाग–1 पृ.122. 23, प्र.प्र.मास्को, हिन्दी संस्करण, जोर मूल में,)

इंटरनेशनल बन जाने के बाद, विभिन्न पंथों ने अपनी स्थिति बरकरार रखने की कोशिशें, और फूट डालने की साजिशें रची। मार्क्स–एंगेल्स ने इन कोशिशों और साजिशों के विरूद्ध सर्वहारा वर्ग की विचारधारा की हिफाजत की और इंटरनेशनल को सही अर्थों में मजदूर वर्ग की मुक्ति के हिरावल के रूप में कायम रखा। पेरिस कम्यून की स्थापना ने मार्क्सवाद को मजदूर वर्ग की एकमात्र सही विचारधारा के तौर पर स्थापित कर दिया। पेरिस कम्यून को कुचल दिये जाने के बाद इंटरनेशनल के भीतर मौजूद पंथ और साजिशें करने लगे। बकूनिन ने इंटरनेशनल में फूट की कहानियां प्रसारित की। एक तरफ, शासकों का मजदूरों पर कहर बरपा किया जा रहा था, तो दूसरी तरफ इंटरनेशनल में मौजूद पंथ इंटरनेशनल की साख का इस्तेमाल करते हुए उसे, मजदूर वर्ग की विचारधारा से वंचित करने की साजिशें रच रहे थे। इंग्लैंड के मजदूर नेता मजदूर वर्ग को विचारधारा और राजनीति से वंचित करने की कोशिशें कर रहे थे। इसी तरह, बकूनिन अपने अराजकतावाद के लिए इसका इस्तेमाल कर रहा था। मार्क्स–एंगेल्स ने इन सभी पंथों के विरूद्ध संघर्ष करके उन्हें पराजित किया और इंटरनेशनल को मजदूर वर्ग के राजनीतिक व विचारधारात्मक हथियार के तौर पर सुदृढ़ किया। बकूनिनवादियों की टुच्ची साजिशों के कारण, जब इंटरनेशनल की गतिविधियां यूरोप में चलना मुश्किल होने लगीं तो हेग कांग्रेस में, इंटरनेशनल के सदरमुकाम को अमरीका में स्थानांतरित करने का निर्णय लिया गया। वास्तविक तौर पर तो यह 1872 में ही काम करना सीमित कर चुका था। लेकिन अमरीका में यह 1874 तक काम करता रहा। 1876 में इसे औपचारिक तौर पर भंग किया गया।

एंगेल्स ने अपने एक पत्र में इंटनेशनल की स्थापना के समय की परिस्थितियों और उसके भंग होने का उल्लेख किया है,

''...आपके इस्तीफे के साथ पुराने इंटरनेशनल का अस्तित्व पूरी तरह खत्म हो गया है। और यह अच्छा ही हुआ। वह द्वितीय साम्राज्य के जमाने का था, जब सारे यूरोप पर छाया हुआ उत्पीड़न मजदूर आन्दोलन को, जो उस समय जग ही रहा था, एकता तथा सभी आन्तरिक वाद–विवाद से विरत का निर्देश दे रहा था। यह वह घड़ी थी, जब सर्वहारा के आम अंतर्राष्ट्रीय हित उभरकर सामने आ रहे थे। जर्मनी, स्पेन, इटली तथा डेनमार्क आन्दोलन में अभी–अभी शामिल हुए थे या इसमें शामिल ही हो रहे थे। वास्तव में, 1864 में आन्दोलन का सैद्धान्तिक स्वरूप यूरोप में सर्वत्र अर्थात जनसाधारण के बीच अभी बहुत अस्पष्ट था। जर्मन कम्युनिज्म ने अभी मजदूर पार्टी के रूप में अस्तित्व ग्रहण नहीं किया था। प्रूदोंवाद अभी इतना क्षीण था कि वह अपना सिक्का नहीं जमा सकता था, बकूनिन की नयी बकवास ने अभी उसके दिमाग में जन्म भी नहीं लिया था, ब्रिटिश ट्रेड–यूनियनों के नेता तक यह सोचते थे कि नियमावली की प्रस्तावना में निर्धारित कार्यक्रम उन्हें आन्दोलन में शामिल होने का आधार प्रदान करता है। पहली बड़ी सफलता द्वारा सभी गुटों के इस भोलेपन भरे सहयोग को ध्वस्त किया जाना अवश्यम्भावी था। यह सफलता थी कम्यून, जो निस्सन्देह बौद्धिक रूप से इंटरनेशनल की संतान था, हालांकि उसे जन्म देने के लिए इंटरनेशनल ने उंगली तक नहीं हिलायी थी और इसके लिए इंटरनेशनल को कुछ हद तक ठीक ही उत्तरदायी ठहराया गया। जब कम्यून के श्रेय की बदौलत इंटरनेशनल यूरोप में नैतिक शक्ति बन गया, तो तुरन्त टुच्ची साजिशें शुरू हो गयी। हर प्रवृत्ति इस सफलता को अपने हितार्थ इस्तेमाल करना चाहती थी। विघटन, जो अवश्यम्भावी था, शुरू हो गया। एकमात्र लोगों की–जर्मन कम्युनिस्टों की–जो सचमुच पुराने व्यापक कार्यक्रम के आधार पर कार्य करने के लिए तैयार थे, बढ़ती शक्ति से ईर्ष्या ने बेल्जियन प्रूदोवादियों को बकूनिनवादी जोखिमबाजों की बांहों में पहुंचा दिया। हेग कांग्रेस वस्तुतः दोनों पार्टियों का खात्मा थी। जिस एक मात्र देश में इंटरनेशनल के नाम पर अब भी कुछ किया जा रहा सकता था, वह अमरीका था, और कार्यकारिणी वहीं स्थानांतरित कर दी गयी, जो सुखद सहज बुद्धि का फल था। अब वहां भी उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी है और उसमें फिर से नया जीवन संचारित करना मूर्खता की बात होगी तथा वक्त बरबाद करना होगा। इंटरनेशनल दस वर्ष तक यूरोपीय इतिहास के एक पक्ष पर–उस पक्ष पर, जिसमें भविष्य अंतर्निहित है–हावी रहा और वह पीछे मुड़कर अपने कार्य को गर्वपूर्वक देख सकता है। लेकिन पुराने रूप में उसकी उपयोगिता खत्म हो चुकी है। पुराने ढर्रे पर नये इंटरनेशनल की स्थापना,तमाम देशों की सभी सर्वहारा पार्टियों के सहबंध के लिए मजदूर आन्दोलन का वैसा ही आम दमन जरूरी होगा, जैसा कि 1849–64 में होता रहा। परन्तु इसके लिए सर्वहारा जगत अब अत्यन्त विशाल, अत्यन्त विस्तृत हो चुका है। मेरे विचार में, अगला

इंटरनेशनल – मार्क्स की रचनाओं द्वारा कुछ वर्षों तक अपना प्रभाव उत्पन्न किये जाने के बाद – विशुद्ध रूप से कम्युनिस्ट होगा और ठीक हमारे सिद्धान्तों की उद्घोषणा करेगा।" (होबोकेन में फ्रेडरिक एडोल्फ जोर्गे का एंगेल्स का पत्र, 12 (17) सितम्बर, 1874 मार्क्स–एंगेल्स संकलित पत्र व्यवहार 1844–95, पृष्ठ–214–215, हिन्दी संस्करण प्र.प्र. मास्को, 1982)

प्रथम इंटरनेशनल के भंग हो जाने के बाद भी सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद पर आधारित मजदूर वर्ग की एकता के प्रयास होते रहे। द्वितीय इंटरनेशनल की स्थापना से पहले यूरोप के अनेक देशों में मजदूर वर्ग की पार्टियां अस्तित्व में आ चुकी थीं। इनमें जर्मनी की पार्टी सबसे पहले और मजबूत स्थिति में अस्तित्व में आ चुकी थी। मार्क्स–एंगेल्स ने जर्मनी में लासालपंथियों के विरूद्ध संघर्ष करके वहां मजदूर वर्ग की पार्टी को स्थापित करने में योगदान दिया। हालांकि जर्मनी में लासालपंथियों से एकता करने में वहां के मार्क्सवादियों ने ढुलमुलपन और समझौते का परिचय दिया था। जिसकी मार्क्स और एंगेल्स ने भर्त्सना की थी। जर्मनी की पार्टी में मार्क्सवाद के साथ अवसरवाद बरकरार रहा।

1889 में जब द्वितीय इण्टरनेशनल की स्थापना हुई तो समूचे यूरोप में मजदूर आंदोलन एक शक्ति बन चुका था। यूरोप के अधिकांश देशों में मजदूर वर्ग की पार्टियां अस्तित्व में आ चुकीं थीं। मजदूरों की राजनीतिक सक्रियता बढ़ गयी थी। 1870 के दशक के बाद के वर्षों का काल अपेक्षाकृत पूंजीवाद के शांतिपूर्ण विकास का था। इस दौरान मजदूर वर्ग की पार्टियों की शक्ति बढ़ी। लेकिन उनके अंदर मौजूद अवसरवाद के कारण उनकी राजनीतिक चेतना के स्तर में गिरावट आयी। जब द्वितीय इण्टरनेशनल की स्थापना हुई, उस समय इसकी बुनियादी दिशा मार्क्सवादी थी। लेकिन इसमें शांतिकाल के दौरान विकसित हुआ अवसरवाद और संशोधनवाद भी मौजूद था। एंगेल्स ने आजीवन इन रुझानों के विरूद्ध संघर्ष किया। जब तक एंगेल्स जिन्दा थे, वे निजी पत्र व्यवहार के माध्यम से इन रुझानों के विरूद्ध संघर्षरत रहे और द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय को सही मार्क्सवादी दिशा अपनाने की ओर बाध्य करते रहे। द्वितीय इण्टरनेशनल का कोई औपचारिक अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र नहीं स्थापित किया गया था और यह स्थिति उसकी स्थापना से 12 वर्ष बाद तक बनी रही।

विभिन्न देशों की मजदूर पार्टियों में अवसरवादी रुझान उस समय इसलिए भी और ज्यादा गहरा गया क्योंकि उन पार्टियों का आधार अभिजात मजदूरों के बीच था। निम्न पूंजीवादी बुद्धिजीवी इन पार्टियों के नेता बनकर अपना राजनीतिक कैरियर बनाने के लिए जुड़ने लगे। जर्मनी की सामाजिक–जनवादी पार्टी में सबसे पहले बर्नस्टीन ने संशोधनवादी सिद्धांत पेश किये। जर्मनी की पार्टी उस समय इण्टरनेशनल की नेतृत्वकारी पार्टी थी। अन्य पार्टियों के नेता भी इस या उस मात्रा में संशोधनवाद पेश कर रहे थे। कुछ पार्टियों में मार्क्सवादी और संशोधनवादी साथ–साथ रह रहे थे। द्वितीय इण्टरनेशनल में विभिन्न पार्टियों में मार्क्सवादी लाइन की हिफाजत करने वाले लोग संघर्ष कर रहे थे। लेकिन अवसरवाद को द्वितीय इंटरनेशनल में नेस्तनाबूद नहीं किया जा सका। जर्मनी की पार्टी, जो उस समय इंटरनेशनल की मजबूत और नेतृत्वकारी पार्टी थी, वह भी अवसरवाद से ग्रस्त हो गयी। इन पार्टियों के अवसरवाद ने मजदूर आंदोलन से गद्दारी का रूप उस समय ग्रहण कर लिया, जब प्रथम विश्व युद्ध की शुरूआत हो गयी। ये

पार्टियां सर्वहारा अंतर्राष्ट्रवाद के स्थान पर अपने देश के पूंजीपति वर्ग के पक्ष में खड़ी हो गयी। द्वितीय इण्टरनेशनल का पतन हो गया। लेकिन यही वह समय था, जब सही मार्क्सवादी इस अवसरवाद के विरूद्ध संघर्ष करके मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आत्मा को सुदृढ़ कर रहे थे। लेनिन ने इनकी गद्दारी को बेनकाब किया और सर्वहारा अंतर्राष्ट्रवाद पर आधारित एक नये इण्टरनेशनल की आधारशिला रखी।

द्वितीय इंटरनेशनल की स्थापना व्यापक होते जाते मजदूर आंदोलन के समय हुई थी। यह मूलतया मार्क्सवादी सिद्धांत के आधार पर की गयी थी। यूरोप के अधिकांश देशों में मजदूर वर्ग की पार्टी बन चुकी थी। यह इंटरनेशनल अपने स्थापना काल से ही अपने भीतर दक्षिणपंथी भटकावों के विरूद्ध संघर्षरत रहा। विभिन्न देशों की पार्टियों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए और आम दिशा तय करने के लिए समय–समय पर इसकी कांग्रेसें होती थीं। शांतिकाल में स्थापित इन पार्टियों में दक्षिणपंथी भटकाव गहराई से जड़ जमाये हुये था। अभिजात मजदूरों में इनका आधार उन्हें और ज्यादा अवसरवाद की ओर ले गया। जिसने अंततोगत्वा इन्हें सामाजिक–अंधराष्ट्रवादी बना दिया और दूसरे इंटरनेशनल के पतन के लिए जिम्मेदार बना।

लेनिन ने दूसरे इंटरनेशनल के अवसरवाद की चर्चा करते हुए कहा था,

> "दूसरे इंटरनेशनल (1889–1914) के अधिकतर नेताओं द्वारा समाजवाद के साथ गद्दारी इस इंटरनेशनल के विचारधारात्मक तथा राजनीतिक दिवालियेपन का परिचायक है। इस पतन का मुख्य कारण उसके अंदर उस टुटपुंजिया अवसरवाद का सचमुच दौर–दौरा रहा है, जिसके बुर्जुआ स्वरूप और खतरे की ओर सभी देशों के क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग के श्रेष्ठतम प्रतिनिधि बहुत दिन से इशारा करते आये हैं। समाजवादी क्रांति को अस्वीकार करते हुए और उसके स्थान पर बुर्जुआ सुधारवाद रखते हुए, वर्गसंघर्ष तथा खास वक्तों पर गृहयुद्ध में उसकी अनिवार्य परिणति से इंकार करते हुए और वर्ग सहयोग का प्रचार करते हुए, देशभक्ति तथा पितृभूमि की रक्षा के वेश में बुर्जुआ अंधराष्ट्रवाद का प्रचार करते हुए और 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' द्वारा बहुत पहले प्रस्थापित समाजवाद के इस बुनियादी सत्य की उपेक्षा अथवा अवज्ञा करते हुए कि श्रमजीवियों का कोई स्वदेश नहीं है, सैन्यवाद के खिलाफ संघर्ष में सभी देशों के बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ सभी देशों के सर्वहाराओं के क्रांतिकारी युद्ध की आवश्यकता को स्वीकार करने के बजाय अपने को भावुकतापूर्ण–कूपमंडूकीय दृष्टिकोण तक ही सीमित रखते हुए, बुर्जुआ संसदवाद तथा बुर्जुआ कानूनियत के आवश्यक उपयोग को, इस कानूनियत को जड़पूजा में परिवर्तित करते हुए, संकटों के युगों में संगठन तथा आंदोलन के गैर–कानूनी रूपों की अनिवार्यता को भुलाते हुए अवसरवादी बहुत दिनों से दूसरे इंटरनेशनल के पतन की तैयारी करते रहे हैं। अवसरवाद का एक अंतर्राष्ट्रीय मुखपत्र, जर्मन 'समाजवादी मासिक', जो बहुत दिनों से राष्ट्रवादी–उदारतावादी स्थिति अपनाता रहा है, बहुत वाजिब ही यूरोपीय समाजवाद पर अपनी विजय का उत्सव मना रहा है। जिसे जर्मन सामाजिक–जनवादी पार्टी तथा अन्य सामाजिक–जनवादी पार्टियों का "केन्द्र" कहा जाता है, उसने दरअसल अवसरवादियों के

> सामने बुजदिली के साथ घुटने टेक दिये हैं। समाजवाद के इस बुर्जुआ प्रवृत्ति से अपरिवर्तनीय और निर्णायक छुटकारा भावी इंटरनेशनल का कार्यभार होना चाहिए।" (लेनिन,'यूरोपीय युद्ध में क्रांतिकारी सामाजिक–जनवाद के कार्यभार' लेनिन की संकलित रचनायें, खण्ड–5, पृ.16–17, प्र.प्र.मास्को, 1982 , हिन्दी संस्करण)

जब तीसरे इंटरनेशनल की स्थापना हुई तो पहले दोनों इंटरनेशनल के व्यापक अनुभव मौजूद थे। इसके सकारात्मक और नकारात्मक अनुभवों की रोशनी में तीसरे इंटरनेशनल को और ज्यादा उच्च धरातल पर खड़ा किया गया। तीसरे इंटरनेशनल का गठन ऐसे समय में किया गया जब रूस में मजदूर वर्ग ने समाजवादी क्रांति सम्पन्न कर दी थी। इस समय यूरोप क्रांति की दहलीज में खड़ा था। विशेषतौर पर जर्मनी में क्रांति आसन्न थी। अक्टूबर क्रांति ने समूचे यूरोप के मजदूर वर्ग के अंदर क्रांतिकारी चेतना का संचार कर दिया था। इसने विश्वयुद्ध से जर्जर देशों के मजदूरों में, पूंजी के जुए से मुक्त होने की आशा और आकांक्षा को बल प्रदान किया था।

लेनिन ने तीसरे इंटरनेशनल की स्थापना के बाद, पहले के दो इंटरनेशनलों के अनुभवों का सार–संकलन करते हुए लिखा था,

> "पहले इंटरनेशनल (1864–72) ने पूंजी के खिलाफ मजदूरों के क्रांतिकारी आक्रमण की तैयारी के लिए उनके अंतर्राष्ट्रीय संगठन की नींव डाली। दूसरा इंटरनेशनल (1889–1914), सर्वहारा आंदोलन का एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन था जो अधिक **विस्तृत** हो गया, जिसके कारण उसका क्रांतिकारी स्तर अस्थायी रूप से गिर गया, अवसरवाद की शक्ति में अस्थायी रूप से वृद्धि हुई, जिसके फलस्वरूप अंततः इस इंटरनेशनल का अपमानजनक पतन हो गया।
>
> "तीसरे इंटरनेशनल का जन्म वास्तव में 1918 में हुआ, जब अवसरवाद तथा सामाजिक अंधराष्ट्रवाद के विरूद्ध अनेक वर्षों तक, खास तौर पर, युद्ध के दौरान चलने वाले संघर्ष के फलस्वरूप कई देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों की स्थापना हुई। आधिकारिक तौर पर तीसरे इंटरनेशनल की स्थापना 1919 में मास्को में उसकी पहली कांग्रेस में हुई। और इस इंटरनेशनल की सबसे लाक्षणिक विशेषता, अर्थात मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्तों को पूरा करने, उन्हें कार्यान्वित करने और समाजवाद तथा मजदूर वर्ग के आंदोलन के युगों पुराने आदर्शों को साकार रूप देने का उसका ध्येय – तीसरे इंटरनेशनल की यह सबसे लाक्षणिक विशेषता तुरंत इस बात में व्यक्त हुई है कि नया, 'तीसरा अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ' विकसित होकर **अभी** से कुछ हद तक **सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ का रूप धारण करने लगा है।**
>
> "पहले इंटरनेशनल ने समाजवाद के लिए सर्वहारा, अंतर्राष्ट्रीय संघ की नींव डाली।
>
> "दूसरे इंटरनेशनल का काल वह काल था, जब कई देशों में इस आंदोलन के व्यापक तथा जनवादी रूप से फैलने की जमीन तैयार की गयी।

"तीसरे इंटरनेशनल ने दूसरे इंटरनेशनल के काम के फल बटोरे, उसकी अवसरवादी, सामाजिक–अंधराष्ट्रवादी, बुर्जुआ तथा टुटपुंजिया खोट को निकाल फेंका और उसने सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को कार्यान्वित करना आरंभ कर दिया है।" ख्लेनिन,'तीसरा इंटरनेशनल और इतिहास में उसका स्थान,' अंतर्राष्ट्रीय मजदूर एवं कम्युनिस्ट आंदोलन, पृ. 305, जोर मूल में, प्र. प्र., मास्को)

जहां पहले इंटरनेशनल और दूसरे इंटरनेशनल के बीच के काल में अंतर है, वहीं दूसरे इंटरनेशनल के पतन और तीसरे इंटरनेशनल की स्थापना में एक निरन्तरता दिखाई पड़ती है। इसका एक कारण अक्टूबर क्रांति में सर्वहारा वर्ग की विजय में है। इस विजय ने तीसरे इंटरनेशनल के गठन के कार्य को अत्यधिक सुगम बना दिया। जहां पहले और दूसरे इंटरनेशनल यूरोप और अमरीका में अपना प्रभाव रखते थे, वहीं तीसरे इंटरनेशनल ने दुनिया के अधिकांश देशों को अपने प्रभाव में ले लिया। अभी तक एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के अधिकांश देशों में मजदूर आंदोलन और कम्युनिस्ट पार्टियां नहीं थी। तीसरे इंटरनेशनल ने इन सभी देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों के गठन में नेतृत्व व सहायता प्रदान की। तीसरे इंटरनेशनल ने अपने भीतर से अवसरवादी, सामाजिक अंधराष्ट्रवादी और अन्य तमाम निम्न पूंजीवादी कूड़े–कचड़े को किनारे लगाकर सर्वहारा वर्ग की विश्व पार्टी के तौर पर अपने को स्थापित किया। इसने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों की धारा को विश्व सर्वहारा आंदोलन के एक अभिन्न अंग के तौर पर स्वीकार करके उपनिवेशों व अर्द्ध–उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों का ज्वार ला दिया। फासिस्ट विरोधी संघर्ष के दौरान, द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण जब परिस्थितियां अत्यधिक जटिल हो गयी, उस समय तीसरे इंटरनेशनल को भंग कर दिया गया। इसको भंग करने की सिफारिश करते हुए कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की अधिशासी कमेटी ने अपने सभी सेक्शनों के लिए यह प्रस्ताव पेश किया; जिसे सभी सेक्शनों ने स्वीकृति दी,

"मार्क्सवाद–लेनिनवाद के संस्थापकों के फैसले (judgement) से निर्देशित, कम्युनिस्ट कभी भी उन सांगठनिक रूपों को बनाए रखने में समर्थ नहीं रहे हैं, जो खुद को जीवनातीत कर चुके हों। उन्होंने मजदूर वर्ग के आंदोलन के संगठन को, और ऐसे संगठनों के काम करने के तरीकों को समग्र रूप से मजदूर वर्ग के आंदोलन के बुनियादी राजनीतिक हित के, ठोस ऐतिहासिक परिस्थिति की विशिष्टताओं के और इस परिस्थिति से तात्कालिक तौर पर उपजी समस्याओं के हमेशा मातहत रखा है। वे महान मार्क्स के उदाहरण को याद रखते हैं, जिन्होंने मजदूर वर्ग के अंतर्राष्ट्रीय संघ की कतारों में अग्रणी मजदूरों को एकताबद्ध किया था, और जब पहला इंटरनेशनल अपनी ऐतिहासिक भूमिका सम्पन्न कर चुका था, यूरोप और अमरीका के देशों में मजदूर वर्ग की पार्टियों के विकास की नींव रखने और परिपक्व परिस्थिति के परिणामस्वरूप जन राष्ट्रीय मजदूर वर्ग की पार्टियों का निर्माण करने के लिए प्रथम इंटरनेशनल को भंग कर दिया क्योंकि संगठन का यह रूप इसके समक्ष दरपेश मांगों के अब अनुरूप नहीं रह गया था।

"उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, कम्युनिस्ट पार्टियों और अलग–अलग देशों के उनके नेतृत्वकारी कार्यकर्ताओं की वृद्धि और राजनीतिक परिपक्वता को देखते हुए, और इस तथ्य

को भी ध्यान में रखते हुए कि वर्तमान युद्ध के दौरान कुछ सेक्शनों ने अंतर्राष्ट्रीय मजदूर आंदोलन के निर्देशक केन्द्र के बतौर कम्युनिस्ट इंटरनेशनल को भंग करने के सवाल को उठाया है।

"विश्वयुद्ध के हालात में कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की कार्यकारी कमेटी का अध्यक्ष मण्डल कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की कांग्रेस आहूत करने में समर्थ नहीं है, इसलिए कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के सेक्शनों द्वारा स्वीकृति के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव पेश करता है।

"अंतर्राष्ट्रीय मजदूर आंदोलन के निर्देशक केन्द्र के बतौर कम्युनिस्ट इंटरनेशनल भंग किया जाता है, इस प्रकार कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के सेक्शनों को कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की कांग्रेसों से निकलने वाले नियमावलियों और प्रस्तावों के प्रति उनके दायित्वों से मुक्त किया जाता है।" (कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की कार्यकारी कमेटी के अध्यक्ष मंडल द्वारा कम्युनिस्ट इंटरनेशनल को भंग करने की सिफारिश करने वाले प्रस्ताव का अंश, 15 मई, 1943, Document of Communist Internationl,Vol. III Jane Degras, अनुवाद हमारा)

तीसरे इंटरनेशनल के भंग हो जाने के बाद भी स्तालिन के नेतृत्व में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी अंतर्राष्ट्रीय मजदूर आंदोलन का दिशा–निर्देश करती रही। सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद के आधार पर कम्युनिस्ट आंदोलन आगे बढ़ा।

यहां हम तीनों इंटरनेशनल के गठन के समय एक समान परिस्थिति पाते हैं; वह है कि मजदूर आन्दोलन और जनवादी आन्दोलन में उभार। पहले इंटरनेशनल के गठन के समय के पहले यूरोप में मजदूर वर्ग इतने दमन के बावजूद उभार की स्थिति में दिखायी देने लगा था। यूरोप के कई देशों में बुर्जआ–जनवादी क्रांति में मजदूर वर्ग बढ़–चढ़ कर हिस्सेदारी कर रहा था। इससे मजदूर वर्ग को राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने के संघर्ष के लिए और पूंजी की सत्ता को समाप्त करने के लिए व्यापक मजदूर वर्ग के संगठन अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के गठन में मदद मिली। दूसरे इंटरनेशनल के समय मजदूर आन्दोलन और ज्यादा व्यापक हो गया था। अधिकांश यूरोपीय देशों में मजदूर वर्ग की पार्टियां गठित हो चुकी थीं। इससे दूसरे इंटरनेशनल को गठित करने में मदद मिली। वहीं तीसरे इंटरनेशनल के गठन के समय यूरोप में विशेषतौर पर जर्मनी में मजदूर क्रांति आसन्न दिखायी पड़ रही थी और अक्टूबर समाजवादी क्रांति ने समूचे यूरोप के मजदूर वर्ग को पूंजी के जुए से मुक्ति का रास्ता दिखा दिया था। इससे तीसरे इंटरनेशनल के गठन का रास्ता सुगम बना दिया।

दूसरी समानता इन तीनों इंटरनेशनलों में मौजूद यह दृढ़ समझदारी है कि सर्वहारा वर्ग की विचारधारा के साथ किसी अन्य वर्ग की विचारधारा का किसी भी तरह का घालमेल सर्वहारा वर्ग की पार्टी को खोखला बना देता है। अतः विजातीय विचारों के विरूद्ध निरंतर संघर्ष इंटरनेशनल के सर्वहारा चरित्र को बचाये रख सकता है।

इस संदर्भ में एंगेल्स ने एक पत्र में लिखा है,

".. पर अगर हमने हेग में समझौते का रास्ता अपनाया होता, फूट दबा दी होती और फूट न पड़ने दी होती तो परिणाम क्या होता? संकीणतावादी खासकर बकूनिनपंथी,एक वर्ष और पा गये होते जिससे वे इंटरनेशनल के नाम पर और भी बड़ी–बड़ी मूर्खतायें और कलंकपूर्ण कृत्य करते। सबसे विकसित देशों के मजदूर उकता कर विमुख हो जाते। बुलबुला फूटता नहीं, बल्कि हल्की–हल्की खरोचें खाकर धीर–धीरे पिचकता और अगली कांग्रेस, जिसमें संकट को सामने आना प्रत्येक दशा में अनिवार्य था, निकृष्टतम वैयक्तिक दंगों और फसाद का अखाड़ा बन कर रह जाती, क्योंकि **सिद्धान्त** की तो हेग में ही कुर्बानी दी जा चुकी होती! तब इंटरनेशनल सचमुच टुकड़े–टुकड़े हो जाता – "एकता" के कारण टुकड़े–टुकड़े हो जाता । इसके बदले हमने ससम्मान सड़े–गले तत्वों से छुटकारा पा लिया है।" (अगस्त बेबेल के नाम एंगेल्स के पत्र से, 20जून,1873, मा.एं. संकलित रचनाएं, खण्ड.2, भाग.2, प्रगति प्रकाशन मास्को, हिन्दी संस्करण, पृ.सं–249)

सिद्धान्त के मामले में दृढ़ता और गैर सर्वहारा विचारों के विरूद्ध सतत संघर्ष से ही मार्क्सवाद का विकास हुआ है। इन तीनों इंटरनेशनलों में मार्क्सवादी लोगों ने हर तरह के विजातीय विचारों के विरूद्ध निर्मम संघर्ष चलाकर सर्वहारा विचारधारा की हिफाजत की है।

तीसरे, ये तीनों इंटरनेशनल क्रमशः मजदूर वर्ग के बढ़ते प्रभाव के सूचक रहे हैं। विभिन्न पंथों के विलीन होने तथा व्यापक मजदूर आबादी के भागीदारी के सूचक रहे हैं। अगर पहले इंटरनेशनल ने समाजवादी पंथों के विरूद्ध संघर्ष करके व्यापक मजदूर आन्दोलन की नींव रखी तो दूसरे इंटरनेशनल ने मार्क्सवाद के आधार पर मजदूर पार्टियों के जरिये मजदूर वर्ग में राजनीतिक चेतना कमोबेश विकसित की। तीसरे इंटरनेशनल ने मार्क्सवादी आधार पर कम्युनिस्ट पार्टियों के गठन के विश्वव्यापी कार्यभार को आगे बढ़ाया।

स्तालिन की मृत्यु के बाद ख्रुश्चेव ने स्तालिन के नेतृत्व पर व्यक्ति पूजा का विरोध करने के नाम पर चौतरफा प्रहार करना शुरू कर दिया। उसने जहां एक तरफ अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन पर "शांतिपूर्ण संक्रमण", "शांतिपूर्ण प्रतियोगिता" और "शांतिपूर्ण सहअस्तित्व" की चीख–पुकार लगायी, वहीं दूसरी तरफ उसने एक के बाद एक संशोधनवादी दिशा लागू करना शुरू कर दिया। ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरूद्ध संघर्ष में माओ त्से–तुङ ने मार्क्सवादी विचारधारा की हिफाजत की, स्तालिन के खिलाफ गाली–गलौच और कुत्सा प्रचार अभियान की ख्रुश्चेवी हमले के विरोध में माओ त्से–तुंङ ने स्तालिन की एक अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग के नेता के तौर पर हिफाजत की तथा इसके साथ ही समाजवादी निर्माण के दौरान स्तालिन की गलतियों व कमियों को रेखांकित किया और यह बताया कि स्तालिन में कुछ कमियां तो ऐसी थी जिनसे बचा जा सकता था। उनके अन्दर मौजूद आधिभौतिकवाद को माओ ने **चिह्नित** किया। ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरूद्ध संघर्ष में जहां माओ लम्बे समय तक अपनी पार्टी के भीतर अंदरूनी विचारधारात्मक संघर्ष चलाते रहे, वही उन्होंने सोवियत संघ के समाजवादी निर्माण के दौरान सोवियत समाज में पैदा होने वाले नये वर्गों का अध्ययन करके तथा खुद चीन में समाजवादी निर्माण की प्रक्रिया में पैदा होने वाली अड़चनों व बाधाओं के वर्ग चरित्र को समझा। इसी समझ के आधार पर उन्होंने चीन में

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की शुरूआत की। समाजवादी समाज में मौजूद वर्गों, वर्ग अन्तर्विरोधों की मौजूदगी को उन्होंने स्वीकारा और समाजवादी समाज के कम्युनिज्म में संक्रमण के दौर में वर्गसंघर्ष ही समाज की चालक शक्ति होगा, इसे निरूपित किया । उन्होंने यह स्पष्ट तौर पर बताया कि कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर दो कार्य दिशाओं के बीच का संघर्ष अंततोगत्वा दो विरोधी वर्गों के संघर्ष की अभिव्यक्ति होता है। उन्होंने समाज के सभी क्षेत्रों में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को स्थापित करने और उसे मजबूत करने की हिमायत की। उन्होंने अधिरचना और मूलाधार को एक दूसरे पर प्रभाव डालने की और किन्हीं परिस्थितियों में अधिरचना द्वारा मूलाधार को निर्णायक तौर पर प्रभावित करने की प्रस्थापना रखी। इस प्रकार, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौरान पूंजीवादी सदर मुकाम को ध्वस्त करने के अभियान में पूंजीवाद के सरगना ल्यू शाओ–ची के विरूद्ध संघर्ष तीव्र हुआ और उसकी कार्यदिशा को पराजित किया गया।

माओ जब तक जीवित रहे, वे दुनिया के कम्युनिस्टों को बिरादराना सलाह देते रहे। उन्होंने उस समय कम्युनिस्ट इंटरनेशनल बनाने के सुझावों को स्वीकार नहीं किया।

इन तीनों इंटरनेशनल के और बाद के अनुभवों की रोशनी में नये इंटरनेशनल के गठन को सही तरीके से अंजाम दिया जा सकता है।

सर्वप्रथम, इंटरनेशनल के गठन की वस्तुगत परिस्थितियों के सम्बन्ध में। इंटरनेशनल का गठन मजदूर आन्दोलन के उभार के समय में ही होते रहे हैं। जब तक वस्तुगत तौर पर मजदूर आन्दोलन में व्यापक हलचल की स्थिति न हो, उसके अन्दर राजनीतिक सक्रियता में शामिल होने की स्थितियां न तैयार हो रही हों, तो कोई भी कारगर इंटरनेशनल का गठन नहीं हो सकता।

दूसरा, इंटरनेशनल की विचारधारात्मक अवस्थिति अब तक के मार्क्सवाद के विज्ञान के विकास की सर्वोच्च अवस्था मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा की होनी चाहिये। हम तीनों इंटरनेशनलों और बाद के दौर में विकसित मार्क्सवाद के विकास के सार्वभौमिक अनुभवों को बिना समेटे सही इंटरनेशनल नहीं गठित कर सकते। हम देखते हैं कि प्रथम इंटरनेशनल का गठन कई समाजवादी पंथों की धाराओं को समेटते हुए इस उद्देश्य से किया गया था जिससे कि व्यापक मजदूर आंदोलन में वास्तविक हिस्सेदारी से इन पंथों की प्रतिगामिता स्पष्ट हो जायेगी और मजदूर वर्ग के सही मुक्ति के दर्शन की जीत होगी। और यही हुआ भी। व्यापक मजदूर आंदोलन ने इन पंथों को पराजित किया। इसी प्रकार, दूसरे इंटरनेशनल की स्थापना बुनियादी मार्क्सवादी–दिशा के आधार पर हुई थी। हालांकि इसमें अवसरवादी और सुधारवादी रुझानों व भटकावों की भरमार थी। यह पहले इंटरनेशनल से और ज्यादा उन्नत धरातल पर हुआ गठन था। तीसरे इंटरनेशनल की स्थापना दूसरे इंटरनेशनल के तमाम किस्म के अवसरवादी और संशोधनवादी कूड़े–कचरे को साफ करके कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के तौर पर की गयी थी। यह इंटरनेशनल साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांतियों के युग में गठित हुआ था। तीसरे इंटरनेशनल के भंग होने के बाद संशोधनवाद के विरूद्ध संघर्ष में और सोवियत संघ में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के कारणों का विश्लेषण करके समाजवादी समाज में वर्गो की मौजूदगी, वर्गसंघर्ष के जारी रहने और जीवन के हर क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को लागू करने तथा पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने के लिए महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति

की भट्टी में तप कर मार्क्सवाद–लेनिनवाद विकसित होकर मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा की स्थिति में पहुंच चुका है। कोई भी इंटरनेशनल आज के समय के मार्क्सवाद, मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा के आधार पर ही बन सकता है।

तीसरा, इंटरनेशनल का गठन करने वाली कम्युनिस्ट शक्तियों की राजनीतिक परिपक्वता ऐसी होनी चाहिए जिससे कि वे अपने–अपने देशों में मजदूर वर्ग के वास्तविक प्रतिनिधि के तौर पर खड़े हो सकें। वे समाजवादी पंथों की अवस्था में न हों। विश्व परिस्थिति और देश की परिस्थिति का ठीक विश्लेषण करके अपने प्रहार को सही तरीके से केन्द्रित करने में सक्षम हों। संशोधनवादी और जड़सूत्रवादी भटकावों के विरूद्ध निर्मम संघर्ष चलाने वाली कम्युनिस्ट पार्टियां ही ऐसी राजनीतिक परिपक्वता हासिल कर सकती हैं जो विश्व परिस्थिति व घरेलू परिस्थिति का ठीक आकलन कर सके और उनसे सर्वहारा वर्ग की मुक्ति के रास्ते के लिए मंजिल निर्धारित कर सके। ऐसे ही वास्तविक शक्तियों से मिलकर नया इंटरनेश्नल बन सकता है।

चौथा, इंटरनेशनल जनवादी केन्द्रीयता के सांगठनिक उसूलों के आधार पर ही सही तरीके से अपने कार्यभारों को अंजाम दे सकता है। तीसरे इंटरनेशनल के भंग होने के बाद आज की दुनिया और ज्यादा एकीकृत सर्वहारा आंदोलन की मांग करती है। विश्व पूंजी के विरूद्ध एकीकृत प्रहार इंटरनेशनल को जनवादी केन्द्रीयता के उसूलों पर ही संगठित करके किये जा सकते हैं। पिछली शताब्दी में वैश्विक पैमाने पर पूंजीवाद के अत्यधिक विकास के कारण जो उन्नत चेतना पैदा हुई है, उसके कारण जनवादी–केन्द्रीयता के उसूलों को लागू करना आज पहले से ज्यादा सुगम हो गया है।

माओ की मृत्यु के बाद चीन में संशोधनवादी सत्ता में आ गये। वहां भी पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो गयी। ऐसी स्थिति में दुनिया के कम्युनिस्टों के सामने गम्भीर चुनौती आ खड़ी हुई। इस चुनौती का मुकाबला करने के घोषित उद्देश्य से अन्य कई अंतर्राष्ट्रीय मंच के अलावा क्रांतिकारी अंतर्राष्ट्रीयतावादी आंदोलन का गठन किया गया। क्रांतिकारी अंतर्राष्ट्रीयतावादी आंदोलन (रिम) ने पिछले 20 वर्षों के दौरान मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा की हिफाजत की है। इसने एक नये किस्म के इंटरनेशनल बनाने का अपना संकल्प व्यक्त किया है। इसने विभिन्न देशों में मौजूद संशोधनवादी विचारों पर प्रहार किये हैं और बहस–मुबाहिसे में सही मार्क्सवादी अवस्थितियां आमतौर पर अपनायी हैं।

लेकिन जहां तक इसके मौजूदा परिस्थितियों के विश्लेषण का प्रश्न है, खुद अपने को कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के भ्रूणरूप में पेश करने की बात है और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के अतीत के मूल्यांकन का सवाल है, वह कई गलत अवस्थितियां अपनाता है। हम नये कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के निर्माण के प्रयास में योगदान देने के मकसद से इन गलत अवस्थितियों की आलोचना कर रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के आकलन के बारे में

रिम के घोषणा पत्र से यह उम्मीद की जाती थी कि वह माओ की मृत्यु के पश्चात होने वाले विश्व परिस्थितियों के परिवर्तन को संज्ञान में लेकर अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की आम दिशा से सम्बन्धित कार्यभार प्रस्तुत करेगा। माओ ने 'महान बहस' के दौरान अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की आम दिशा के सम्बन्ध में प्रस्थापनायें पेश की थी। तब से विश्व परिस्थिति में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों को बिना संज्ञान में लिए किसी सही आम दिशा का सूत्रीकरण नहीं किया जा सकता। यदि कोई इन परिवर्तनों को संज्ञान में लेता है और उनसे निकलने वाले निष्कर्षों को सूत्रबद्ध नहीं करता, बल्कि उन्हें पुराने सूत्रीकरणों में ही समायोजित करने की कोशिश करता है तो इसे भी मूलतया संज्ञान में न लेना ही कहा जायेगा। इस सम्बन्ध में मार्क्सवादी दृष्टिकोण क्या होना चाहिये? लेनिन के अनुसार,

> "मार्क्सवाद हमसे वर्गों के सहसंबंधों तथा प्रत्येक ऐतिहासिक घड़ी की ठोस विशेषताओं का अत्यंत सटीक, वस्तुगत रूप से जांच परख योग्य आकलन की अपेक्षा करता है। हम बोल्शेविकों ने नीति की किसी भी वैज्ञानिक आधारशिला के दृष्टिकोण से नितांत अपरिहार्य इस अपेक्षा के प्रति सदैव निष्ठावान रहने का प्रयत्न किया है।
>
> "हमारा सिद्धान्त जड़सूत्र नहीं है, अपितु कार्यकलाप का पथप्रदर्शक है", यह बात मार्क्स तथा एंगेल्स उन "फार्मूलों" को, जो ऐतिहासिक प्रक्रिया की प्रत्येक विशेष **अवधि** की **ठोस** आर्थिक तथा राजनीतिक अवस्थाओं द्वारा अनिवार्यतः परिवर्त्य (परिवर्तन करने योग्य–सं.) **आम** कार्यभारों को हद से हद रेखांकित कर सकते हैं, मात्र कंठस्थ करने और दुहराने का ठीक ही मखौल उड़ाते हुए सदैव कहा करते थे।" (लेनिन, कार्यनीति के बारे में पत्र, सं. रचनायें, हिन्दी संस्करण, खंड.6ए प्र. प्र. मास्को, 1983, पृ–सं.326)

रिम के घोषणापत्र को पढ़ने के बाद उपर्युक्त उद्धरण का उल्लंघन दिखाई पड़ता है। हालांकि घोषणापत्र में बार–बार विश्व परिस्थिति में आये व्यापक परिवर्तनों की बात की गयी है। फिर भी, न तो इन परिवर्तनों को रेखांकित किया गया है और फलस्वरूप न ही इनसे निकलने वाले कार्यभारों की चर्चा की गयी है। समूचे घोषणापत्र में ऐसे निष्कर्ष भरे पड़े हैं जो प्रदर्शित करते हैं कि आम तौर पर दुनिया 1960 के दशक के समय से लेकर आज तक ठहरी हुई है। रिम के घोषणापत्र के परिशिष्ट में कहा गया है,

> "विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था के गहराते जा रहे संकट की रोशनी में, सभी बड़े अंतरविरोध–उत्पीड़ित राष्ट्रों और साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच का अंतरविरोध, पूंजीवादी और साम्राज्यवादी देशों में सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का अंतरविरोध और साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच के आपसी अंतरविरोध–नये परिवर्तनों से गुजर रहे हैं। इनमें से, उत्पीड़ित राष्ट्रों और साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच का अंतरविरोध और एक महत्वपूर्ण हद तक, हालांकि गौण रूप से साम्राज्यवादी देशों में मजदूर वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच के अंतरविरोध घनीभूत हो रहे हैं। सोवियत साम्राज्यवादी खेमे के पतन ने अंतर–साम्राज्यवादी अंतरविरोध को इसकी पहले के स्तर की सघनता को कम किया है।

लेकिन उनके गहराते संकट और जनता के संघर्षों के बढ़ते जाने के समक्ष साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच आज पुनर्संयोजन व नयी टकराहट होने में यह परिलक्षित हो रहा है कि साम्राज्यवादी सांठ–गांठ (collusion) कलह (contention) पर आधारित है।" (Declaration of The Revolutionary Internationalist Movement and Long live Marxism-Leninism-Maoism!', page-70, 1998 edition)

यह सही है कि रिम ने चार बुनियादी अंतरविरोधों में से एक समाजवादी देशों और साम्राज्यवाद के बीच के अंतरविरोध को उचित ही हटा दिया है। जब समाजवादी देश ही नहीं रहे तो यह दो विपरीत व भिन्न समाज व्यवस्थाओं के बीच का अंतरविरोध भी नहीं रह जाता। लेकिन इसके बाद के तीन अंतरविरोधों की चर्चा करते हुए ये अभी भी उत्पीड़ित राष्ट्रों और साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच के अंतर्विरोध को सबसे ज्यादा घनीभूत होते हुए देख रहे हैं। यहां यह भी उल्लेख कर दें कि जब ये उत्पीड़ित राष्ट्रों और साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच के अंतरविरोध को तीखा होता हुआ देखते हैं, तो इनका आशय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से होता है और यह राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन अवश्यम्भावी तौर पर नयी जनवादी क्रांति की मंजिल से होकर गुजरेगा, ऐसी इनकी मान्यता है। यह लेनिन द्वारा बतायी गयी दो विश्व क्रांतिकारी धाराओं – राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की धारा और सर्वहारा समाजवादी क्रांति की धारा – को आज की परिस्थिति में भी मूलतया उसी तरह विश्लेषण करते हैं। माओ की '63 की 'आम दिशा' में विश्व की परिस्थिति का जो विश्लेषण पेश किया गया था, इनके अनुसार वह आज भी लागू होता है। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों के दौरान प्राप्त हुई अलग–अलग देशों की राजनीतिक आजादी का इनके विश्लेषण में कोई स्थान नहीं है। इसलिए ये एक हद तक पूंजीवादी विकास को कुछ देशों में स्वीकार करते हुए भी, यहां तक कि प्रधानतया पूंजीवादी देश बन जाने के बावजूद भी, एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के देशों में नव जनवादी क्रांति की मंजिल का लक्ष्य निर्धारित करते हैं।

रिम अपने घोषणा पत्र में यह पेश करता है कि साम्राज्यवाद की सभी विशिष्टतायें, आज के विश्व पर भी लागू होती हैं। लेनिन ने साम्राज्यवाद की जिन विशिष्टताओं का उल्लेख किया था, उनमें से एक कि दुनिया का क्षेत्रीय बंटवारा, विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के बीच पूरा हो गया है और बंटी हुई दुनिया को फिर से बांटने के लिए साम्राज्यवादी देशों के पास युद्ध करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। लेनिन, तथ्यों और आंकड़ों के जरिये बताते हैं कि किस साम्राज्यवादी ताकत ने कितने वर्गमील के इलाके को अपने कब्जे में कर लिया है यानी उपनिवेशों के लिए युद्ध तेज हो गये हैं। लेनिन की 'साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था' नामक रचना में इसका लेखा– जोखा प्रस्तुत किया गया है। लेकिन उपनिवेशवाद का दौर समाप्त हो जाने के बाद आये परिवर्तनों को रिम का घोषणा पत्र आम तौर पर अस्वीकार करता है, वह जिन तथ्यों को स्वीकार भी करता है उनसे तार्किक नतीजे नहीं निकलता।

मसलन, वह कुछ उत्पीड़ित देशों मे विकसित होने वाले पूंजीवादी सम्बंधों की चर्चा करते हुए कहता है,

"शरद, 1980 के संयुक्त विज्ञप्ति में कहा गया हैः

"साम्राज्यवाद की अपने प्रभुत्वाधीन देशों में पूंजीवादी सम्बंधों के महत्वपूर्ण तत्वों के प्रविष्ट करने की एक असंदिग्ध प्रवृत्ति होती है। कुछ आश्रित देशों में पूंजीवादी विकास यहां तक हो चुका है कि उन्हें अर्द्ध–सामंती चित्रित करना ठीक नहीं है। उन्हें पूंजीवादी प्रधान कहना बेहतर है, तब भी जब सामंती या अर्द्ध– सामंती उत्पादन सम्बंधों के महत्वपूर्ण तत्व या अवशेष और अधिरचना में उनके प्रतिबिम्ब मौजूद हों।

"ऐसे देशों में, इन स्थितियों का ठोस विश्लेषण किया जाना चाहिए और मार्ग, कार्यभारों, चरित्र और वर्ग–शक्तियों के संश्रय से सम्बन्धित उचित निष्कर्ष निकाले जाने चाहिए। सभी मामलों में विदेशी साम्राज्यवाद, क्रांति का लक्ष्य बना रहता है।"

1980 की इस विज्ञप्ति को उद्धृत करते हुए आगे घोषणा पत्र कहता है,

"यह दृष्टिकोण गलत और खतरनाक है कि औपचारिक राजनीतिक स्वतंत्रता और व्यापक पूंजीवादी सम्बंधों के प्रवेश के योग ने अधिकांश या अनेक पहले के प्रत्यक्ष उपनिवेशों में नव जनवादी क्रांति की आवश्यकता को समाप्त कर दिया है। विभिन्न त्रात्स्कीवादियों, सामाजिक–जनवादियों एवं क्रांतिकारी मार्क्सवाद के निम्न पूंजीवादी आलोचकों द्वारा प्रोत्साहित किये गये इस दृष्टिकोण के अनुसार, साम्राज्यवाद और इसके द्वारा उत्पीड़ित राष्ट्रों के बीच कोई गुणात्मक भेद नहीं है, इस प्रकार साम्राज्यवादी युग के एक अत्यंत महत्वपूर्ण लक्षण को एक ही धक्के में समाप्त कर दिया जाता है।"

और आगे,

"यहां तक कि पूंजीवादी प्रधान उत्पीड़ित देशों में भी साम्राज्यवाद अपने देशी अवलम्बों सहित क्रांति की प्रथम मंजिल में प्रमुख निशाना बना रहता है। इन देशों में क्रांति का मार्ग अर्द्ध–सामंती सम्बंध रखने वाले देशों से अक्सर व्यापक रूप से भिन्न होते हुए भी यह सामान्य तौर पर आवश्यक है कि समाजवादी क्रांति शुरू हो सकने से पहले क्रांति की जनवादी, साम्राज्यवाद–विरोधी मंजिल से गुजरे।" ('Declaration of RIM and Long live Marxism-Leninism-Maoism!', 1998 edition,page 40-41, अनुवाद हमारा)

रिम अपने समूचे घोषणा पत्र में यह कहीं नहीं बताता कि प्रधानतः पूंजीवादी देश बन जाने के बावजूद वह क्यों क्रांति की दो मंजिलों से होकर गुजरेगा? यदि सामंतवाद विरोधी कार्यभार मूलतया पूरे हो गये हों तो फिर साम्राज्यवाद से मुक्ति का कार्यभार क्यों समाजवादी क्रांति नहीं सम्पन्न करेगी? यह उम्मीद की जाती थी कि 1980 में जब संयुक्त विज्ञप्ति जारी हुयी थी, उसके बाद 1984 में गठित रिम संयुक्त विज्ञप्ति के इन अंशों से तार्किक नतीजे निकालेगा। लेकिन यह उम्मीद गलत थी। क्योंकि रिम ने पहले यह मान लिया कि साम्राज्यवाद से उत्पीड़ित देश में चाहे जो भी वर्ग सत्ता में हो और सामाजिक–आर्थिक संरचना में चाहे जो भी परिवर्तन आ गये हों, क्रांति अवश्यम्भावी तौर पर दो मंजिलों से होकर गुजरेगी। रिम ने बाद में भी कभी इस विषय पर कोई विश्लेषण पेश नहीं किया है जिससे यह जाना जा सके कि एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के देशों में क्रांति की मंजिल क्यों नव जनवादी क्रांति की होगी। उन्होंने तो यह एक स्वतःसिद्ध स्थापना मान ली है। और वे इस प्रस्थापना से नतीजे निकाल लेते हैं। इस

तरीके के विश्लेषण और निष्कर्षों से तो खुद मार्क्स, लेनिन भी शरमा जायें कि कैसे–कैसे उनके उत्तराधिकारी हो गये हैं।

इसलिए जब वे साम्राज्यवाद के सामाजिक अवलम्बों की चर्चा करते हैं तो यह छोड़ देते हैं कि इन देशों में साम्राज्यवाद के सामाजिक अवलम्ब कौन से वर्ग हैं। यदि साम्राज्यवाद के सामाजिक अवलम्ब सामंत वर्ग है तो उसे इन्हें चिह्नित करना होगा। यदि साम्राज्यवाद का सामाजिक अवलम्ब पूंजीपति वर्ग है, तो उन्हें इसे चिह्नित करना होगा। लेकिन वे सामाजिक अवलम्ब के समूचे सवाल को कयास लगाने के लिए छोड़ देते हैं। स्तालिन ने अपने समय की एक हकीकत का बयान किया था कि साम्राज्यवाद का सामाजिक अवलम्ब उपनिवेशों व आश्रित देशों में सामंतवाद है। लेकिन रिम ने दुनिया के विकास को 1963 की 'आम दिशा' के समय से बांध रखा है। यदि आज की हकीकत यह हो गयी है कि सामंतवाद इन देशों में साम्राज्यवाद का सामाजिक अवलम्ब नहीं रह गया है बल्कि साम्राज्यवाद का सामाजिक अवलम्ब पूंजीवाद हो गया है तो इस तथ्य को साफगोई के साथ स्वीकार करना चाहिये। रिम, लकीर के फकीर की तरह उसी जगह कदमताल करता रहता है जहां 1963 की 'आम दिशा' के समय की स्थिति थी।

जिन भी देशों में रिम यह मानता है कि वहां पर साम्राज्यवाद ने पूंजी को प्रविष्ट कराके उन्हें पूंजीवादी प्रधान देशों में तब्दील कर दिया है, इन देशों में क्रांति का एक कार्यभार राष्ट्रीय साम्राज्यवाद विरोधी तो बनता है लेकिन क्रांति के दूसरे कार्यभार जनवादी की अवधारणा कैसे पैदा होती है, रिम इस प्रश्न को जड़सूत्रवादी तरीके से हल करता है।

लेनिन ने एक समय कहा था,

> "आगे बढ़ें ! क्या होगा यदि जन समुदाय के संघर्ष के बावजूद प्रशियाई रास्ते पर स्तालिपिन की नीति लम्बे समय तक जारी रहती है? तब रूस की कृषि अर्थव्यवस्था पूर्णतया पूंजीवादी हो जायेगी, बड़े किसान लगभग सारी एलाटमेंट जमीन पर कब्जा कर लेंगे, कृषि पूंजीवादी हो जायेगी, और पूंजीवाद के अंतर्गत कृषि प्रश्न का कोई भी "समाधान"– आमूल परिवर्तनवादी या गैरआमूल परिवर्तनवादी – सम्भव नहीं रह जायेगा। तब मार्क्सवादी, जो अपने प्रति ईमानदार हैं, स्पष्ट तौर पर और खुले तौर पर तमाम "कृषि कार्यक्रम" को पूर्णतया कूड़े के ढेर पर फेंक देंगे और जन–समुदाय से कहेंगेः रूस को जुंकर किस्म का नहीं बल्कि अमरीकी पूंजीवाद देने के लिए मजदूरों ने वह सब किया जो वे कर सकते थे। सर्वहारा वर्ग की सामाजिक क्रांति में शामिल होने के लिए मजदूर अब आपका आह्वान करते हैं, क्योंकि स्तालिपिन भावना में कृषि सवाल के 'समाधान' के **पश्चात्** किसान समुदाय के जीवन की आर्थिक दशाओं में **गम्भीर** परिवर्तन लाने में समर्थ **और कोई दूसरी क्रांति नहीं हो सकती।**" (Lenin, `on the Beaten track', C. W. vol-15, page-45, प्र.प्र.मास्को, 1973, अंग्रेजी संस्करण, अनुवाद हमारा, जोर मूल में)

यहां ध्यान में रखना जरूरी है कि लेनिन इस प्रश्न पर रूस में पूंजीवादी–जनवादी क्रांति के दौर में यह टिप्पणी कर रहे थे। उस समय जब रूस में जारशाही थी और उसको उखाड़ फेंकना रूसी क्रांति

का लक्ष्य था। लेनिन उस समय भी कृषि के सवाल पर विचार करते समय उसके पूंजीवादी विकास पर नजर रखे हुए थे और उपरोक्त संभावना व्यक्त कर रहे थे।

लेकिन, रिम में मौजूद मार्क्स–लेनिन–माओ के अनुयायी पहले से बिना किसी विश्लेषण के सभी एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के देशों के लिए नव जनवादी क्रांति के कार्यक्रम की हिमायत करते हैं। उस पर तुर्रा यह कि उनकी इस प्रस्थापना के साथ जो भी असहमत हैं, उन्हें वे आनन–फानन में त्रात्स्कीवादी, सामाजिक–जनवादी या क्रांतिकारी कम्युनिस्टों के निम्न पूंजीवादी आलोचक का फतवा जारी कर देते हैं। संजीदगी से बहस करने के स्थान पर चिप्पेबाजी करना कोई मार्क्सवादी शैली नहीं है।

हकीकत यह है कि रिम के घोषणा पत्र में द्वितीय विश्वयुद्धोत्तरकालीन परिस्थितियों में आये व्यापक बदलावों के उल्लेख के बावजूद, उसका कोई विश्लेषण व आकलन नहीं किया गया है और दुनिया को 1963 के आस–पास स्थिर मान लिया गया है।

आज की विश्व परिस्थिति क्या हैं? इसको अगर संक्षेप में व्यक्त किया जाय तो पहली बात, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है कि लेनिन द्वारा बतायी गयी साम्राज्यवाद की पांच चारित्रिक विशेषताओं में से पहली चार जस की तस लागू होती हैं। लेकिन पांचवी विशेषता, प्रत्यक्ष उपनिवेश अथवा क्षेत्रीय बॅटबारा अब नहीं लागू होती। इतिहास आगे बढ़ गया है। प्रत्यक्ष उपनिवेश की समाप्ति के बाद अभी भी एक ओर थोड़े से साम्राज्यवादी देशों तथा दूसरी ओर उन पर भांति–भांति से निर्भर देशों की एक समूची श्रृंखला वाली व्यवस्था है। इस श्रृंखला की कड़ियां न केवल तीसरी दुनिया के देश हैं बल्कि विकसित किन्तु कमजोर पूंजीवादी देश भी हैं। तीसरी दुनिया के अधिकांश देश राजनीतिक तौर पर आजाद हैं। हालांकि साम्राज्यवादी उनकी राजनीतिक आजादी पर लगातार दबाव बनाये रखते हैं, लेकिन यह मूलतः कायम है। साम्राज्यवाद को इनके लूटने का, इनके यहां से अतिलाभ कमाने का प्रधान तरीका, प्रत्यक्ष राजनीतिक शासन (उपनिवेश) या परोक्ष राजनीतिक नियंत्रण (अर्द्ध–उपनिवेश या नव–उपनिवेश) नहीं है, बल्कि आर्थिक है। साम्राज्यवाद अपने और इनके बीच उत्पादक शक्तियों के अति विशाल फर्क से इस शोषण को अंजाम देता है। इसी से वह अतिलाभ कमाता है। इस शोषण को नियमित करने के लिए साम्राज्यवादियों ने अपनी सामूहिक संस्थायें – अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन – बना रखी हैं। इन संस्थाओं में और इनके बाहर साम्राज्यवादियों के बीच तीखी आपसी प्रतिद्वन्द्विता विद्यमान है। शोषण का रूप मूलतः आर्थिक होने के बावजूद, साम्राज्यवाद तीसरी दुनिया के खिलाफ राजनीतिक और सामरिक तरीकों का इस्तेमाल करने के लगातार प्रयास करता रहता है। खासकर तब जब उसकी व्यवस्था का कोई खुलेआम उल्लंघन करने का प्रयास करता है तो वह तुरंत और निर्णायक कार्यवाही करता है। साम्राज्यवाद को आर्थिक नव–उपनिवेशवाद की इस स्थिति में उसकी इच्छा के विरुद्ध धकेला गया है। अन्यथा चौतरफा प्रभुत्व–राजनीतिक, सामरिक, आर्थिक सभी–जमाने की उसकी इच्छा जस की तस है। इजारेदार पूंजी का चरित्र जस का तस बना हुआ है, प्रभुत्व जमाने की इच्छा वाला। यह तीसरी दुनिया में विकास की मंशा से नहीं, लूट की मंशा से जा रही है। इस लूट से यह प्रधान उत्पाद के तौर पर वहां की जनता की तबाही कर रही है तो गौण उत्पाद के तौर पर विकृत, असंतुलित विकास। साम्राज्यवाद द्वारा तीसरी दुनिया के इस लूट में, इसके पूंजीपति वर्ग, साम्राज्यवाद के साथ हैं। वे साम्राज्यवाद के कनिष्ठ साझेदार बन गये हैं और

वैश्विक अतिरिक्त मूल्य विनियोग में अपनी पूंजी के हिसाब से अपना हिस्सा बंटाते हैं। तीसरी दुनिया के पूंजीपति अब इन देशों में साम्राज्यवाद के सामाजिक अवलम्ब बन गये हैं। उन्होंने, साम्राज्यवाद के पुराने सामाजिक अवलम्बों सामंती वर्ग या कबीलाई अभिजात की जगह ले ली है। लेकिन वे दलाल नहीं कनिष्ठ साझेदार हैं। अब तीसरी दुनिया का समूचा पूंजीपति वर्ग प्रतिक्रियावादी हो गया है। उसकी प्रगतिशील भूमिका समाप्त हो गयी है। अब तीसरी दुनिया के देशों में भी समाजवादी क्रांति एजेण्डे पर आ गयी है। जनवादी क्रांति के कार्यभार यहां मूलतः पूरे हो गये हैं। राष्ट्रीय मुक्ति के बचे–खुचे कार्यभार अब समाजवादी क्रांति ही पूरे करेगी। राष्ट्रीय मुक्ति की धारा अब विश्व सर्वहारा समाजवादी क्रांति का अभिन्न अंग न होकर उसमें समाहित हो गयी है। अब साम्राज्यवाद–विरोध पूंजीवाद–विरोध का ही हिस्सा हो गया है। ताज्जुब की बात है कि रिम का घोषणपत्र इस समूचे विकासक्रम को अपनी नजर में नहीं रखता। जहां वह व्यापक परिवर्तनों की चर्चा करता भी है, वहां भी वह इसके निष्कर्ष नहीं निकालता। नव जनवादी क्रांति की माला जपते हुए वह तीसरी दुनिया के देशों में साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ने वाले एक राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की मौजूदगी बताता है। लेकिन उसके अनुसार, यह वर्ग नव जनवादी क्रांति का नेतृत्व नहीं कर सकता। इसी प्रकार, वह उपनिवेशों, अर्द्ध (नव) उपनिवेशों की स्थिति का अभी भी हवाला देता है। अगर आज उपनिवेशों की संख्या गिनी जाय तो वे नाममात्र की संख्या में हैं। यदि अफगानिस्तान व इराक को शामिल भी कर लिया जाय, तो भी उपनिवेशों की संख्या समूची दुनिया में नगण्य है। इस प्रकार, दुनिया नव उपनिवेश या अर्द्ध–उपनिवेश की स्थिति से आगे जा चुकी है। लेकिन रिम इन तीसरी दुनिया के देशों को अभी भी अर्द्ध–उपनिवेश या नव–उपनिवेश के तौर पर चित्रित किये हुए है। अधिकांश देशो में सामंतवाद का मूलतया खात्मा हो जाने के बावजूद यह अभी भी सामंतवाद विरोधी संघर्ष को मुख्य कार्यभार के तौर पर चित्रित करता है। तीसरी दुनिया के इन देशों में होने वाली क्रांति को वह विश्व सर्वहारा क्रांति की एक धारा के तौर पर चित्रित करता है, जबकि अधिकांश देशों में ये कार्यभार मुख्यतः पूरे हो गये हैं। जो नहीं भी पूरे हुए हैं उनको समाजवादी क्रांति ही पूरा करेगी। इस निष्कर्ष की बात करना तो दूर की बात है, वे इस पर तुरन्त त्रात्स्कीवादी होने का चिप्पा जड़ देते हैं। धन्य है जड़सूत्रवाद!

रिम के घोषणा पत्र में दुनिया के तीन बुनियादी अंतरविरोधों को ठीक ही चित्रित किया गया है, यह हम ऊपर कह चुके हैं। लेकिन दुनिया के पैमाने पर अंतर्विरोधों की चर्चा करते हुए इसने साम्राज्यवादी शक्तियों एवं उत्पीड़ित देशों के बीच के अंतर्विरोध को सबसे तीखा बताया है और इसके बाद उसने श्रम और पूंजी के अंतर्विरोध को तीखे होते हुए दर्शाया है। उन्होंने इन सब अंतर्विरोधों के मूल में पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली को बताया है। लेकिन वे यह कहीं नहीं निष्कर्ष निकालते कि दुनिया के पैमाने पर प्रधान अंतर्विरोध कौन सा है। और आज की हकीकत है कि आज समूची दुनिया के पैमाने पर, श्रम और पूंजी का अंतरविरोध प्रधान है। दुनिया भर में विद्यमान श्रम और पूंजी के अंतरविरोध के दो हिस्से हैं। एक है, साम्राज्यवादी देशों के भीतर श्रम और पूंजी की अंतरविरोध। दूसरा है, तीसरी दुनिया के देशों में श्रम और पूंजी का अंतरविरोध। हालांकि अपनी प्रकृति में दोनों एक हैं लेकिन शोषक और शोषित देश होने के चलते उनकी स्थिति थोड़ा भिन्न हो जाती है। तीसरी दुनिया में भी श्रम व पूंजी का अंतरविरोध प्रधान

हो जाने से आज दुनिया के पैमाने पर श्रम की एकता और समाजवादी आंदोलन का अभूतपूर्व आधार पैदा हुआ है।

साम्राज्यवादी और उत्पीड़ित देशों/राष्ट्रों के बीच के अंतरविरोध के भी दो हिस्से हैं। एक वे देश हैं जो आर्थिक नव उपनिवेश के दौर में प्रवेश कर चुके हैं। दूसरे वे हैं जो नव–औपनिवेशिक उत्पीड़न के शिकार हैं। जहां पहले में समाजवादी क्रांति करके साम्राज्यवादी शोषण से मुक्ति पायी जा सकती है, वहीं दूसरे देशों में से कई में जनवादी क्रांति ही, क्रांति की मंजिल होगी। दूसरी किस्म के देशों की संख्या कम है और वे छोटे हैं। ज्यादातर देश पहली श्रेणी में आते हैं।

रिम को अगर एक नये किस्म के अंतर्राष्ट्रीय बनाने में सार्थक भूमिका निभानी है तो उसे अपने घोषणा पत्र में मौजूद जड़सूत्रवादी विश्लेषण से निजात पानी होगी।

अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के मूल्यांकन सम्बन्धी सवाल

रिम ने अपने घोषणा पत्र में अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के समाहार निकालने के बारे में, शुरू में ही दृष्टिकोण प्रतिपादित किया है,

> "अपनी विरासत का सारांश (समाहार–सं.) करना एक सामूहिक जिम्मेदारी है, जिस कार्य को समूचे अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन द्वारा किया जाना चाहिए। इसे मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांतों के आधार पर उस समय विद्यमान ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों और उन द्वारा सर्वहारा के हिरावल दस्तों पर लगायी गयी सीमाओं को पूर्णतया ध्यान में रखते हुए तथा सबसे ऊपर इस भावना से कि अतीत वर्तमान के लिए सेवारत है और अतीत की वर्तमान को वर्तमान के पैमाने से मापने, ऐतिहासिक स्थितियों की आधिभौतिक गलतियों से बचने के लिए, निर्मम वैज्ञानिक ढंग से करना चाहिए। ऐसा सम्पूर्ण सारांश (समाहार–सं.) करना निस्संदेह काफी समय लेगा। लेकिन वर्तमान विश्व घटनाओं का दबाव, क्रांतिकारी संभावनाओं के विकसित हो रहे अवसर यह मांग करते हैं कि कुछ मूलभूत सबक आज ही निकाले जायें ताकि सर्वहारा की हिरावल शक्तियां अपनी जिम्मेदारी और सुचारू रूप से निभाने के योग्य हो सकें।" (रिम का घोषणा पत्र, हिन्दी संस्करण, पृ.7–8)

इसके बाद रिम का घोषणापत्र यह कहता है कि मार्क्सवाद का विकास निरंतर संशोधनवाद के विरूद्ध संघर्ष करके विभिन्न मंजिलों से होकर गुजरते हुए, मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद तक पहुंचा है। संशोधनवाद की विभिन्न किस्मों की चर्चा करते हुए यह कहता है कि ये बुर्जुआ वर्ग की सेवा करती हैं। और यह ठीक ही घोषणा करता है कि बगैर संशोधनवाद को परास्त किये हुए साम्राज्यवाद और सामान्यतः प्रतिक्रियावाद को पराजित करना सम्भव नहीं है। और आज के युग के मार्क्सवाद,मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद को बगैर अपनाये संशोधनवाद को परास्त नहीं किया जा सकता।

इसके पश्चात वह, दूसरे इंटरनेशनल की सुधारवादी व अवसरवादी पार्टियों से, सम्बंध– विच्छेद करते हुए, लेनिन द्वारा, अक्टूबर क्रांति व कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की स्थापना की चर्चा करता है और साथ ही कम्युनिस्ट आंदोलन के यूरोपीय परिघटना से विश्वव्यापी परिघटना के तौर पर विकसित होने की चर्चा करता है। यह ठीक है।

माओ द्वारा स्तालिन की गलतियों के विश्लेषण की चर्चा करने के बाद यह कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस के बारे में कुछ मूल्यांकन पेश करता हैं। इसके अनुसार,

> "क्योंकि कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस ने अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास पर इतना गहरा प्रभाव डाला, इसलिए यह आवश्यक है कि तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों की रोशनी में कांग्रेस की रिपोर्ट का संतुलित और वैज्ञानिक मूल्यांकन किया जाय। विशेष रूप से जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की हार के कारणों का गहनता से अध्ययन किया जाना चाहिए। तथापि कुछ निष्कर्ष अभी निकाले जा सकते हैं और आज के मार्क्सवादी–लेनिनवादियों के वर्तमान कार्यों की रोशनी में तीन स्पष्ट विचलनों की अवश्य पहचान की जानी चाहिए।
>
> "प्रथमतः साम्राज्यवादी देशों में फासीवाद और बुर्जुआ जनतंत्र के बीच भेद, जहां कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए निश्चय ही वास्तविक महत्व का है, वहां बुर्जुआ तानाशाही के ही रूपों के बीच के अंतर को चरम रूप में और फासीवाद के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए युद्धनीतिक पड़ाव (रणनीतिक मंजिल–सं.) के रूप में भी लिया गया। दूसरे, यह धारणा प्रतिपादित की गयी कि सर्वहारा की बढ़ रही दरिद्रता विकसित देशों में मजदूर वर्ग के बीच दरार को पाटने और परिणामस्वरूप उनके ध्रुवीकरण करने का भौतिक आधार तैयार करेगी, जिसके बारे में लेनिन ने 'साम्राज्यवाद' और 'दूसरे इंटरनेशनल के पतन' सम्बंधी अपनी रचनाओं में इतने जोरदार ढंग से विश्लेषण किया है। जहां यह निश्चय ही सत्य है कि संकट की गहराई ने विकसित पूंजीवादी देशों में मजदूरों की कुलीनता (अभिजात मजदूरों–सं) के सामाजिक आधार को दुर्बल बनाया और सामाजिक जनवादियों के आधिपत्य के अधीन मजदूरों के विशाल वर्गों के जुड़ने की वे वास्तविक संभावनायें पैदा कीं जिनकी कम्युनिस्ट पार्टियों को आवश्यकता थी, वहां किसी प्रकार की युद्धनीतिक (रणनीतिक–सं.) चेतना के तौर पर यह विश्वास करना उचित नहीं था कि मजदूर वर्ग में फूट को बचाया जा सकता है। तीसरे, साम्राज्यवादी देशों में जब फासीवाद को एकाधिकार बुर्जुआजी के अत्यंत प्रतिक्रियावादी वर्गों का साम्राज्य परिभाषित किया गया तो इससे एकाधिकार बुर्जुआजी के एक हिस्से को प्रगतिशील के रूप में देखने की खतरनाक, सुधारवादी और शांतिवादी प्रवृत्ति के लिए रास्ता खुल गया।" (रिम का घोषणा पत्र, हिंदी सं.पृ.13)

अभी रिम ने विरासत का समाहार करने के कार्य को सामूहिक जिम्मेदारी माना था और यह घोषित किया कि इस कार्य को समूचे अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन द्वारा किया जाना चाहिए। लेकिन ठीक दो

पृष्ठों के बाद ही वह कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस का समाहार करने लग गया। फिर भी जब रिम ने सातवीं कांग्रेस की कुछ गलतियों की ओर ध्यान दिलाया है तो उसकी जांच–पड़ताल करना जरूरी हो जाता है। देखें, सातवीं कांग्रेस, 1935 में स्वीकृत प्रस्ताव क्या कहता है,

> "ऐसी परिस्थिति में शासक पूंजीपति वर्ग अधिकाधिक **फासिज्म** में, वित्तीय पूंजी के सबसे ज्यादा प्रतिक्रियावादी, सबसे ज्यादा अंधराष्ट्रवादी और सबसे ज्यादा साम्राज्यवादी तत्वों की खुली आतंकवादी तानाशाही की स्थापना में अपनी मुक्ति का रास्ता खोजने की कोशिश कर रहा है।....किंतु फासिज्म की वृद्धि और उसकी विजय पूंजीपति वर्ग के साथ वर्ग–सहयोग की सामाजिक–जनवाद की फूटपरस्त नीति के फलस्वरूप असंगठित मजदूर वर्ग की कमजोरी का ही नहीं, बल्कि स्वयं पूंजीपति वर्ग की कमजोरी का प्रमाण है जो मजदूर वर्ग के संघर्ष में एकता के एहसास से भयभीत है, क्रांति से डरा हुआ है, तथा अब पूंजीवादी– जनवाद के पुराने तरीकों से अपनी तानाशाही बरकरार रखने में सक्षम नहीं रह गया है।" (कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव 'फासिज्म और मजदूर वर्ग की एकता फासीवाद के खिलाफ जनमोर्चा', पृ.119, ज्यार्जी दिमित्रोव, समकालीन प्रका. पटना)

यहां यह प्रस्ताव बहुत स्पष्ट तौर पर कहता है कि पूंजीपति अब पूंजीवादी–जनवाद के पुराने तरीकों से अपनी तानाशाही बरकरार रखने में सक्षम नहीं रह गया है। यहां इजारेदार बुर्जुआजी के एक हिस्से को प्रगतिशील रूप में देखने की सुधारवादी, खतरनाक और शांतिवादी प्रवृत्ति के लिए रास्ता कहां से खुलता है? रिम ने अगर और ज्यादा खुलासा किया होता तो शायद इसे और ज्यादा बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलती। सातवीं कांग्रेस के प्रस्ताव को अगर पढ़ा जाय तो यह फासिज्म के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए मजदूर वर्ग की एकता के आधार पर फासिस्ट विरोधी जनमोर्चा कायम करने की रणनीति व कार्यनीति पेश करता है। प्रस्ताव फासीवाद के विरूद्ध संघर्ष करने में बुर्जुआ जनतंत्र को रणनीतिक मंजिल के रूप में ठीक ही लेता है। उदाहरण के लिए ज्यार्जी दिमित्रोव पूंजीवादी जनवाद के संदर्भ में अपने रुख को स्पष्ट करते है,

> "पूंजीवादी–जनवाद के प्रति हमारा रुख सभी परिस्थितियों में एक जैसा नहीं रहता। मसलन अक्टूबर क्रांति के समय रूसी बोल्शेविकों ने उन सभी राजनीतिक पार्टियों के खिलाफ जीवन–मरण का संघर्ष चलाया जिन्होंने पूंजीवादी जनवाद की रक्षा करने के नारे के तहत सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना का विरोध किया, बोल्शेविकों ने इन पार्टियों से इसलिए संघर्ष किया कि क्योंकि उस समय पूंजीवादी–जनवाद का झंडा ऐसा परचम् बन गया था, जिसके गिर्द सारी प्रतिक्रांतिकारी शक्तियां सर्वहारा की विजय को चुनौती देने के लिए गोलबंद हो गयी थीं। इस समय पूंजीवादी देशों में स्थिति सर्वथा भिन्न है। अब फासिस्ट प्रतिक्रांति मेहनतकश जनता पर शोषण और दमन की बर्बरतम हुकूमत कायम करने के प्रयास में पूंजीवादी जनवाद पर हमला कर रही है। इस समय अनेक पूंजीवादी देशों में श्रमिक जनता के सामने यह आवश्यकता उठ खड़ी हुई है कि वह सर्वहारा

तानाशाही और पूंजीवादी–जनवाद के बीच नहीं, बल्कि पूंजीवादी– जनवाद और फासिज्म के बीच साफ–साफ चुनाव करे, और यह चुनाव आज ही करे।" वही, पृ..101)

ज्यार्जी दिमित्रोव की दृष्टि में पूंजीवादी–जनवाद और फासिज्म के बीच रणनीतिक मंजिल का अंतर स्पष्ट है। यह पूंजीवादी–जनवाद और फासिज्म के बीच अन्तर करके कम्युनिस्ट इंटरनेशनल अलग–अलग देशों के मजदूर वर्ग के लिए रणनीति और कार्यनीति तय करने की बात करते हैं।

ज्यार्जी दिमित्रोव ने बहुत स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि अनेक पूंजीवादी देशों में श्रमिक जनता के सामने यह आवश्यकता उठ खड़ी हुई है कि वह सर्वहारा तानाशाही और पूंजीवाद के बीच नहीं, बल्कि पूंजीवादी–जनवाद और फासिज्म के बीच साफ–साफ चुनाव करे और यह चुनाव आज ही करे। यह सीधी रणनीतिक मंजिल के तौर पर पूंजीवादी–जनवाद के लिए लड़ने की बात है। और यह बात सही है। जब फसिज्म सत्ता में आ जाय, उस समय क्या पूंजीवादी जनवाद को बचाने के संघर्ष को मजदूर वर्ग की सर्वोच्च प्राथमिकता में नहीं आ जायेगा? क्या अन्य सारे कार्यभार इस कार्य के अधीन नहीं हो जायेंगे? हम समझते हैं कि इस मामले में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दिशा सही थी। रिम की उसी तरह की बात है कि यदि किसी देश में कोई दूसरा कब्जा कर ले और उस देश का मजदूर वर्ग अपने बुनियादी नारे दोहराता रहे और अपनी रणनीतिक मंजिल बदल कर उस कब्जाकारी देश के विरूद्ध अपने संघर्ष को न केन्द्रित करे। मसलन आज इराक में, अमरीकी कब्जाकारियों के विरूद्ध मुक्ति का कार्यभार रणनीतिक मंजिल ग्रहण कर चुका है। आज इराक में मजदूर वर्ग के समक्ष अमरीकी और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से मुक्ति का कार्यभार सर्वोपरि है। लेकिन रिम के अनुसार, इराक के मजदूर वर्ग को अपने पुराने बुनियादी नारे को दोहराते ही रहना चाहिए।

इसी प्रकार, जिस समय आर्थिक संकट के फलस्वरूप मजदूर वर्ग की दरिद्रता बढ़ती जा रही थी और अभिजात मजदूरों का एक हिस्सा भी दरिद्रता की चपेट में आ रहा था; सामाजिक– जनवादी पार्टियों के सामाजिक आधार में दरारें बढ़ रही थी; सामाजिक–जनवादी पार्टी के प्रभाव में रहने वाले मजदूरों के एक हिस्से में उनसे मोह भंग हो रहा था और वे कम्युनिस्टों के साथ एकताबद्ध संघर्ष की मांग कर रहे थे; उस समय, सातवीं इंटरनेशनल में ज्यार्जी दिमित्रोव ने सामाजिक–जनवादी पार्टियों के दो हिस्सों में विभाजित होते जाने की और उसके वामपंथी धड़े के कम्युनिस्टों के करीब आने की बात कही और उन्होंने मजदूरों में बढ़ती बदहाली के फलस्वरूप सामाजिक–जनवादी पार्टियों के प्रभाव में रहने वाले मजदूरों के साथ कार्यवाही की एकता कायम करने का कार्यनीतिक नारा दिया। इस कार्यवाही की एकता के नारे से यह कहां निष्कर्ष निकलता है कि सातवीं कांग्रेस में ज्यार्जी दिमित्रोव ने रणनीतिक तौर पर सामाजिक–जनवादी पार्टियों से एकता का नारा दिया था जबकि सामाजिक–जनवादी पार्टियों का सामाजिक आधार अभिजात मजदूरों में है और अभिजात मजदूर अपने देश के पूंजीपति वर्ग की नीतियों का समर्थक है।

खुद दिमित्रोव के शब्दों में,

"सर्वप्रथम, तो संकट ने मजदूर वर्ग के उस सबसे सुरक्षित तबके की, मजदूरों के बीच उस तथाकथित अभिजात तबके की चूल–मूल भी हिला दी है जिस पर, जैसा कि हम

जानते हैं, सामाजिक–जनवाद समर्थन के लिए भरोसा करता है। इस तबके ने भी पूंजीपति वर्ग के साथ वर्ग सहयोग की नीति के औचित्य के बारे में अपने विचारों में अधिकाधिक संशोधन करना शुरू किया है।"

और आगे,

"सभी देशों में सामाजिक–जनवादी पार्टियों की कतारों में क्रांतिकारिता के संचार की जो प्रक्रिया चल रही है, उसका विकास असमान है। यह कल्पना नहीं कर लेनी चाहिए कि जो सामाजिक–जनवादी मजदूर क्रांतिकारी चेतना से अनुप्राणित हो रहे हैं, वे **एक बारगी** और सामूहिक पैमाने पर सुसंगत वर्ग संघर्ष की स्थिति अपना लेंगे तथा बिना किसी मध्यवर्ती चरण से गुजरे **सीधे** कम्युनिस्टों के साथ एका कायम कर लेंगे। बहुत से देशों में यह एक कमोबेश मुश्किल, कमोबेश पेचीदा और लम्बी प्रक्रिया होगी और हर हालत में मूलतः हमारी नीति और कार्यनीति के सही होने पर निर्भर करेगी। हमें इस संभावना को भी समझ लेना चाहिए कि पूंजीपति वर्ग के साथ वर्ग सहयोग की स्थिति से पूंजीपति वर्ग के खिलाफ वर्ग संघर्ष की स्थिति में पहुंचने के दौर में कुछ सामाजिक–जनवादी पार्टियां और संगठन कुछ समय तक स्वतंत्र संगठनों या पार्टियों के रूप में अस्तित्व में बने रहेंगे। ऐसी स्थिति में ऐसे सामाजिक–जनवादी संगठनों व पार्टियों को पूंजीपति वर्ग का दुर्ग समझने की बात निस्संदेह सोची ही नहीं जा सकती।" (वही, पृ.96–97)

यह शुद्ध तौर पर सातवीं कांग्रेस में कार्यनीति का प्रश्न था कि सामाजिक–जनवादी पार्टियों के प्रभाव में रहनेवाले मजदूरों के साथ कैसे एकता कायम की जाय।

लेकिन रिम इन मसलों पर तथा अन्य अनेक अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास से जुड़े मसलों पर अपने समाहार देने के लिए बेताब है। उसने माओ के नेतृत्व में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की यह गम्भीर कमी चिह्नित की कि माओ के नेतृत्व में,

"चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने जहां संशोधनवादियों की अपेक्षा मार्क्सवादी– लेनिनवादी पार्टियों के विकास पर अत्यधिक ध्यान दिया वहां उसने कम्युनिस्टों की अंतर्राष्ट्रीय एकता विकसित करने के लिए आवश्यक ढंग और तरीकों का पता नहीं लगाया। वैचारिक और राजनीतिक एकता में उसके योगदान के बावजूद विश्व स्तर पर संगठनात्मक एकता के निर्माण करने के प्रयासों में यह कहीं नहीं दिखाई देता। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के नकारात्मक पक्षों मुख्यतः अतिकेन्द्रीयकरण के परिणामस्वरूप संघटक कम्युनिस्ट पार्टियों की नष्ट हुई पहलकदमी और स्वतंत्रता के पक्षों के बारे में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की समझ अतिरंजित थी। जहां चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने पितृ–पार्टी की अवधारण की उचित आलोचना की, अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के बीच इसके नुकसानदेह प्रभाव को इंगित किया और पार्टियों के आपसी बिरादराना सम्बन्धों के सिद्धान्तों पर बल दिया, वहां विचारों पर वाद–विवाद और एक सामूहिक दृष्टिकोण ग्रहण करने के लिए एक संगठित मंच के

अभाव ने इस समस्या को सुलझाने के बजाय इसे वास्तव में और ज्यादा जटिल बना दिया।" ('रिम का घोषणा पत्र', हिन्दी संस्करण पृ.18)

यहां भी रिम ने, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की कम्युनिस्ट इंटरनेशनल न बनाने के बारे में आलोचना तो कर दी लेकिन कहीं भी माओ त्से–तुङ की उस समय की स्थिति, विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन की स्थिति और अन्य ऐतिहासिक सीमाओं की चर्चा नहीं की। अगर यह कार्यभार समूचे अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के विभिन्न कालों के अलग–अलग पक्षों का समाहार करे, तो रिम को इतनी जल्दी क्या पड़ी है कि वह बगैर परिस्थितियों का विश्लेषण किये समाहार के नाम पर कुछ निष्कर्ष पेश करती जाये। क्या इससे कम्युनिस्ट आंदोलन को क्रांतिकारी आधार पर एकताबद्ध करने में मदद मिलेगी? अगर रिम का जवाब 'हां' में है तो उसे यह स्पष्ट करना चाहिए कि किस आधार पर रिम यह कहती है कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के नकारात्मक पक्षों – मुख्यतः अतिकेन्द्रीकरण के परिणामस्वरूप संघटक कम्युनिस्ट पार्टियों की नष्ट हुई पहलकदमी और स्वतंत्रता के पक्षों के बारे में समझ अतिरंजित थी।

इसी तरह, रिम का घोषणा पत्र यह कहता है,

"सांस्कृतिक क्रांति की विस्मयकारी विजयों के बाद, चीन की पार्टी तथा राज्य में संशोधनवादियों ने महत्वपूर्ण पद बनाये रखे और ऐसी नीतियों तथा पद्धतियों को प्रोत्साहन दिया जिनसे एक सच्चे अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के पुनर्निर्माण के दुर्बल प्रयासों को विचारणीय क्षति पहुंचायी।" (वही, पृ–20)

तब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर माओ त्से–तुंङ और सही कार्यदिशा मानने वालों की क्या स्थिति रही होगी। वैसे अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के भीतर दो कार्य दिशाओं, दो विपरीत दृष्टिकोणों के संघर्ष का यदि सही मूल्यांकन न हो तो जल्दबाजी में कुछ फतवे जारी करने की या निष्कर्ष निकालने की प्रवृत्ति रहती है।

मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद के बारे में

रिम ने अपनी पथ–प्रदर्शक विचारधारा के तौर पर मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद को स्वीकार किया है। इसका कहना है,

"**घोषणा पत्र में** माओ त्से–तुंङ द्वारा "मार्क्सवादी–लेनिनवादी विज्ञान के विकास" पर सही तरीके से जोर दिया गया है और दावा किया गया है कि उन्होंने इसे "नयी मंजिल" में पहुंचाया। फिर भी, हमारे **घोषणा पत्र** में "मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ त्से–तुंङ विचारधारा" शब्दावली का इस्तेमाल इस नयी मंजिल के बारे में हमारी अपूर्ण समझदारी को व्यक्त करता था। विगत नौ वर्षों में हमारा आन्दोलन मार्क्सवाद का माओ त्से–तुङ द्वारा किये गये विकास को ज्यादा पूर्णरूप से आत्मसात करने में एक लम्बे, समृद्ध और समग्र बहस तथा संघर्ष में लगा रहा है। हमारे आन्दोलन की पार्टियां और संगठन तथा समूचे तौर पर रिम साम्राज्यवाद व प्रतिक्रिया के विरूद्ध क्रांतिकारी संघर्ष में लगे रहे हैं।.....सिद्धान्त और

> व्यवहार में इन अग्रगतियों से सर्वहारा विचारधारा हमें और ज्यादा गहराई से आत्मसात करने में तथा इस आधार पर एक दूरगामी कदम उठाने में, मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद को मार्क्सवाद की एक नयी, तीसरी और उच्चतर मंजिल की मान्यता देने में समर्थ बनाया है।" (`Declaratiom of RIM and Long Live Marxism-Leninism-Maoism'!, Page.55-56, अनुवाद हमारा)

रिम द्वारा माओवाद 1993 में स्वीकार किया गया। इसके पहले पेरू की कम्युनिस्ट पार्टी माओवाद को स्वीकार करती थी। बाकी दुनिया की क्रांतिकारी कम्युनिस्ट संगठन माओ विचारधारा शब्दावली का इस्तेमाल करते थे। यह भी सही है कि दुनिया के क्रांतिकारी कम्युनिस्ट संगठनों में माओ विचारधारा समझदारी के बारे में भी मतभेद थे और वे आज भी हैं। लेकिन रिम की स्थापना से लेकर 1993 तक, माओ विचारधारा से माओवाद तक की यात्रा में क्या गहराई आयी है और रिम की संघटक पार्टियों व संगठनों के सिद्धान्त और व्यवहार में क्या अग्रगतियां आयी हैं, जिसके आधार पर वे एक दूरगामी कदम उठाने में, यानी माओ विचारधारा से माओवाद शब्दावली बदलने में उन्हें समर्थ बनाया है, इसका खुलासा उन्होंने नहीं किया है। वे इसका खुलासा कर भी नहीं सकते थे क्योंकि दुनिया की कम्युनिस्ट पार्टियों में अभी किसी भी पार्टी का व्यवहार आज के दिन तक इस स्थिति में नहीं पहुंचा है कि वो मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा के विज्ञान में इजाफा करने का दावा करे। हां, समझदारी में गहराई हमेशा आती रहती है। लेकिन रिम ने यह कहीं नहीं बताया कि उनकी विचारधारा में कहां गहराई आयी है जो उन्हें मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा की शब्दावली को बदलकर मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद करने की ओर ले गयी।

रिम, माओ द्वारा गुणात्मक तरीके से मार्क्सवाद–लेनिनवाद के विज्ञान को एक ऊंची मंजिल में ले जाने की विस्तार से चर्चा करता है और कहता है,

> "माओ त्से–तुंङ ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद का एक नयी उच्चतर मंजिल में विकास; चीनी क्रांति को अनेक दशकों तक अपने द्वारा नेतृत्व प्रदान करते हुए, आधुनिक संशोधनवाद के विरूद्ध विश्वव्यापी संघर्ष में नेतृत्व देते हुए, और सर्वाधिक महत्वपूर्ण, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के अंतर्गत क्रांति को जारी रखने के सिद्धान्त व व्यवहार में तरीके निकालते हुए किया, जिससे कि पूंजीवाद की पुनर्स्थापना रोकी जा सके और कम्युनिज्म की ओर बढ़ना जारी रखा जा सके माओ त्से–तुंङ ने मार्क्सवाद के सभी तीनों संघटक अंगों – दर्शन, राजनीतिक अर्थशास्त्र और वैज्ञानिक समाजवाद – को अत्याधिक विकसित किया।"
>
> (वही, पृ.59, अनुवाद हमारा)

यह वही समझदारी है जो चीन की कम्युनिस्ट पार्टी अपनी दसवीं कांग्रेस तक में व्यक्त करती रही है और इसी आधार पर वह माओ त्से–तुंङ विचारधारा कहती रही है। माओ त्से–तुंङ के समय चीन की कम्युनिस्ट पार्टी इस बारे में बहुत स्पष्ट थी कि युग के साथ 'वाद' जुड़ा हुआ है। लेनिनवाद की व्याख्या करते स्टालिन ने जब यह कहा था कि लेनिनवाद, साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांतियों के युग का मार्क्सवाद है, तो यह बहुत सटीक तरीके से लेनिनवाद की व्याख्या करता था। आज भी अगर युग वही है तो मार्क्सवाद में माओ के विचारधारात्मक योगदान को स्वीकार करते हुए चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने माओ

विचारधारा सही और सटीक शब्द दिया था। और यह शब्द आज भी लागू होता है क्योंकि रिम यह बताने में पूर्णतया असमर्थ है कि उसने ऐसी क्या नयी बात खोज ली है जिसे पहले चीन की कम्युनिस्ट पार्टी नहीं देख सकी थी। माओ के योगदान में, चाहे दर्शन के क्षेत्र में "एक को दो में विभाजित करने", चाहे राजनीतिक अर्थशास्त्र में उत्पादन की प्रक्रिया में लोगों के आपसी सम्बंध एवं वितरण की प्रणाली तथा चाहे अधिरचना और मूलाधार में कभी–कभी अधिरचना की निर्णायक भूमिका, और चाहे महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के सिद्धान्त और व्यवहार के दौरान प्राप्त अनुभवों की बातें रही हों, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी इन सभी गुणात्मक रूप से उच्चतर मंजिल के योगदानों के आधार पर ही माओ विचारधारा कहती रही है। दुनिया के क्रांतिकारी कम्युनिस्ट इसे ही स्वीकार करते रहे हैं।

रिम ने निम्नलिखित निष्कर्ष ठीक ही निकाला है, और इन्हीं निष्कर्षों के आधार पर मार्क्सवाद और संशोधनवाद के बीच विभाजक रेखा खींची जा सकती है,

> "लेनिन ने कहा है, "केवल वही मार्क्सवादी है, जो वर्ग संघर्ष को मान्यता देने से और आगे बढ़कर सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को मान्यता देता है।" माओ त्से–तुंङ के नेतृत्व में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के जरिये हासिल अमूल्य सबक और अग्रगति की रोशनी में यह विभाजक रेखा और भी तीखी हो गयी है। अब यह कहा जा सकता है कि केवल वही मार्क्सवादी है जो वर्ग संघर्ष को मान्यता देते हुए सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को मानता है, से बढ़कर कम्युनिज्म आने तक समाजवाद के समूचे काल के दौरान वर्गों की, दुश्मनीपूर्ण वर्ग अंतरविरोधों की, पार्टी में मौजूद पूंजीपति वर्ग की और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के अंदर वर्ग संघर्ष जारी रखने को मान्यता देता है। जैसा कि माओ अत्यधिक जोरदार तरीके से कहते हैं, "इस प्रश्न पर स्पष्टता का अभाव संशोधनवाद की ओर ले जाता है"।" (वही, पृष्ठ–64, अनुवाद हमारा)

इन्हीं निष्कर्षों के आधार पर चीन की कम्युनिस्ट पार्टी अपनी दसवीं कांग्रेस तक में माओ के योगदान को स्वीकार करते हुए माओ त्से–तुंङ विचारधारा कहती थी और समूची दुनिया के क्रांतिकारी कम्युनिस्ट इसे स्वीकार करते थे। रिम ने भी 1984 में अपने घोषणापत्र में ठीक इन्हीं निष्कर्षों के आधार पर माओ त्से–तुङ विचारधारा कहा था। लेकिन अब उन्हें ये निष्कर्ष माओवाद कहने के लिए आवश्यक लगते हैं। लेकिन इसके कारण क्या हैं? वे स्पष्ट नहीं कर पाते।

रिम को यह पता है कि एक बार लिन प्याओ ने युग बदलने की बात की थी, जब उसने 'लोकयुद्ध की विजय अमर रहे' नामक लेख में यह कहा था कि माओ त्से–तुङ विचारधारा का युग साम्राज्यवाद के पूर्ण विनाश एवं समाजवाद की विश्वव्यापी विजय का युग है। लेकिन चीन की पार्टी ने उसकी इस युग की व्याख्या को नहीं स्वीकार किया और न ही उत्तराधिकारी की उसकी स्थिति को चलने दिया। इसके बाद युग बदलने की बात किसी ने नहीं की। अब बगैर युग बदले मार्क्सवाद–लेनिनवाद के विज्ञान को एक नयी ऊंचाई तक पहुंचाने वाले माओ को माओवाद से नवाजने का क्या वैज्ञानिक आधार है, इसकी चर्चा करते हुए रिम ने नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (मशाल) की बहस का जवाब देते हुए लिखा है,

"एन.सी.पी. (मशाल) सामाजिक विकास के युग और हमारे विज्ञान के विकास की मंजिलों के मुद्दों को गड्ड–मड्ड कर देती है। मार्क्सवाद–लेनिनवाद– माओवाद क्रांति का विज्ञान है, एक जीवंत एवं विकासमान विज्ञान है। इसको हासिल करने की प्रक्रिया में कम्युनिस्ट समाज व वर्गों और उनकी गतिकी के बारे अधिकाधिक सीखते हैं, और यदि वे क्रांतिकारी संघर्षों में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते हैं तो उन्हें व्यवहार के जरिये हासिल की गयी नयी समझदारी के अनुरूप अपने सिद्धान्त को विकसित करना होगा। और भी; परिस्थितियां बदलती हैं और ऐसे नये अंतरविरोध उभरते हैं जिन्हें पूर्ववर्ती नेता जान नहीं सकते थे, इस प्रकार उनको हल करने के तरीके को विकसित करने में वे असमर्थ थे। विज्ञान में निरंतर विकास की आवश्यकता से इंकार करने का कोई भी प्रयास इसे इसके धारदार हथियार की स्थिति से कम करके ऐसे जड.सूत्र में बदल देना होगा जो बेकार ही नहीं होगा बल्कि यहां तक कि वर्ग संघर्ष की जटिलताओं से निपटने में बाधा ही होगा।"

(`A World to Win', page-46-47, 1998, अनुवाद हमारा)

यहां रिम की अवस्थिति ठीक है। एक ही सामाजिक विकास के युग में मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा के विज्ञान का विकास हो सकता है। साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांति के युग में रहते हुए विज्ञान का विकास सम्भव है। और यह होगा। रिम के तर्क ठीक हैं। उन पर कोई ऐतराज नहीं है। लेकिन विज्ञान के जिस विकास में गुणात्मक सार्वभौमिक योगदान को चीन की कम्युनिस्ट पार्टी सहित दुनिया भर के मार्क्सवादी–लेनिनवादी स्वीकार करके उसे माओ विचारधारा का नाम देते रहे हैं, उसे रिम ही माओवाद का नाम दे रही है। यह अनावश्यक विवाद है। इस विवाद का कोई अर्थ नहीं है। रिम का कहना है,

"चीनी क्रांति के दौरान माओ ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद का अनेक क्षेत्रों में विकास किया। लेकिन महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की भट्टी (crucible) में ही हमारी विचारधारा ने छलांग लगायी और तीसरा महान मील पत्थर मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद पूरे तौर पर उभरा। मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद के उच्चतर धरातल (plane) से क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पूर्ववर्ती महान नेताओं की शिक्षाओं को और अधिक व्यापकता के साथ ग्रहण करेंगे और वस्तुतः खुद माओ त्से–तुंङ के पहले के योगदान भी और ज्यादा गहरा महत्व ग्रहण कर लेते हैं। आज, बिना माओवाद के कोई मार्क्सवाद–लेनिनवाद नहीं हो सकता। वस्तुतः माओवाद का निषेध खुद मार्क्सवाद–लेनिनवाद का निषेध है। "(`Declaralion of RIM and Long live Marxism-Leninesm-Maoism',Page-65,अनुवाद हमारा)

हम भी यही कहते हैं कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की भट्टी में ही हमारी विचारधारा छलांग लगाकर मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा में विकसित हुई। चीनी क्रांति के दौरान माओ ने जिन आम नियमों की खोज की वे माओ विचारधारा के हिस्से बनते हैं। मसलन, संयुक्त मोर्चा बनाने और उसे चलाने के बारे में आम नियम, क्रांतिकारी युद्धों को संचालित करने वाले आम नियम, इत्यादि। इसी प्रकार, 'व्यवहार के बारे में' 'अंतर्विरोध के बारे में,' इत्यादि उनकी रचनायें भी माओ त्से–तुंङ विचारधारा

का हिस्सा बनती है। माओ त्से–तुंङ विचारधारा की उपलब्धियों का निषेध किसी को भी संशोधनवाद की ओर ले जायेगा। यह स्थिति खुद रिम की 1993 के पहले की रही है। लेकिन 1993 के अपने दस्तावेज में यह कहता है कि माओवाद का निषेध खुद मार्क्सवाद–लेनिनवाद का निषेध है। पता नहीं, माओवाद के निषेध से इनका मतलब यह भी है कि माओ त्से–तुङ विचारधारा को स्वीकार करने वाला माओवाद का निषेध करता है या नहीं! यदि ऐसा है, तो यह गलत है। यह अपने आप में शब्दों की बाजीगरी लगती है।

जब पेरू की कम्युनिस्ट पार्टी ने सबसे पहले माओवाद का इस्तेमाल किया था, उस समय उसने मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद के साथ–साथ चेयरमैन गोंजालो की पथ प्रदर्शक विचारधारा इस्तेमाल करना शुरू किया था। आज भी कुछ पार्टिया ऐसा ही एक पुछल्ला लगा रही हैं। हम समझते हैं, यह गलत है। इससे मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा के विज्ञान के विकास का कुछ भी लेना–देना नहीं है। इसी प्रकार माओ विचारधारा के इस्तेमाल से न तो माओ के विचारधारात्मक योगदान में कोई कमी आती है और न ही यह उनके अवदानों को गुणात्मक रूप से नयी ऊंचाई देने में कोई बाधा है। न ही इससे विज्ञान के विकास में कोई बाधा पहुंचती है। बल्कि लम्बे समय से प्रचलित रहने से यह क्रांतिकारी कम्युनिस्टों के बीच आमतौर पर स्वीकार्य है। तब माओवाद जैसा नया शब्द देकर वह अनावश्यक तौर पर 'वितंडावाद' को जन्म दे रहा है। जरूरत इस बात की है कि माओ के योगदान की चर्चा हो और इस बात पर क्रांतिकारी कम्युनिस्ट एक राय तक पहुंचे कि माओ के कौन से योगदान सार्वभौमिक महत्व के हैं, जिनसे मिलकर माओ त्से–तुंङ विचारधारा बनती है और कौन से योगदान ऐसे हैं जो चीन की विशिष्ट परिस्थितियों की उपज हैं, और जो दुनिया के अन्य देशों के कम्युनिस्टों के लिए सिर्फ संदर्भ सामग्री की ही भूमिका अदा करते हैं। इन बाद वाले योगदानों को मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ त्से–तुंङ विचारधारा का हिस्सा नहीं समझा जा सकता।

रिम जहां मार्क्सवादी अवस्थितियों की हिफाजत में आमतौर पर सही रुख अपनाता है, वहीं वह संघर्ष के रूपों की चर्चा करते हुए सैन्यवाद का शिकार हो जाता है। वह हथियारबंद संघर्ष के बारे में जितनी रिपोर्ट और जानकारी देता है, उन्हें गौरवामंडित करता है, उतना वह विचारधारात्मक–राजनीतिक प्रश्नों पर ताकत नहीं लगाता। हथियारबंद संघर्षों का वर्ग संघर्ष से रिश्तों और अलग–अलग वर्गों की स्थिति और उनकी भूमिका के बारे में इनकी रिपोर्टों में कोई खास स्थान नहीं रहता। रिम अपने घोषणा पत्र में कहता है,

> "माओ का लोक युद्ध का सिद्धान्त सार्वभौमिक तौर पर सभी देशों में लागू होने योग्य है, हालांकि प्रत्येक देश की ठोस स्थितियों में लागू करना होगा, और विशेषतौर पर आज विश्व में मौजूद दो आम किस्म के देशों–साम्राज्यवादी देशों और उत्पीड़ित देशों–में क्रांतिकारी रास्तों को ध्यान में रखना चाहिए।" (वही,पृष्ठ 59–60, अनुवाद हमारा)

साम्राज्यवादी देशों में लोकयुद्ध को लागू करने की बात में रिम का सैन्यवाद झलकता है। जबकि साम्राज्यवादी देशों और पूंजीवादी देशों में आमतौर पर आम बगावत की बात होती रही है और व्यवहार में यही होता रहा है। लेकिन लम्बे समय तक क्रांति की तैयारी के काल में कम्युनिस्ट वर्ग संघर्ष के अन्य रूपों को हमेशा ऊपर रखते रहे हैं। क्योंकि साम्राज्यवादी देशों में लम्बे समय तक क्रांति की तैयारी का काल

होता है और क्रांतिकारी संकट की घड़ी में ही वहां आम बगावत का आह्वान कम्युनिस्ट पार्टी करती है। लेकिन वहां भी लोकयुद्ध की बात करके रिम सैन्यवादी कमजोरी का परिचय दे रहा है।

अगर समग्रता में बात की जाय तो रिम पहले के इंटरनेशनलों के अनुभव के सही सार –संकलन के आधार पर नहीं, बल्कि एकतरफा सार–संकलन के आधार पर नये इंटरनेशनल के गठन की योजना बना रहा है।

जैसा कि शुरू में, इंटरनेशनलों के अनुभवों में कहा गया है कि प्रत्येक इंटरनेशनल का गठन मजदूर वर्ग की बढ़ती सक्रियता और उभार के दौर में हुआ था। उन तीनों इंटरनेशनलों ने पहले से ज्यादा ऊंचाई पर अपने को संगठित किया। उन तीनों के बीच एक निरंतरता थी। पहले इंटरनेशनल के भंग होने के बाद अंतर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग के पास मार्क्स और एंगेल्स जैसा नेतृत्व था जो विभिन्न देशों के मजदूर वर्ग को राजनीतिक सलाह व निर्देश दे रहा था। दूसरे इंटरनेशनल के पतन के बाद लेनिन व बोल्शेविक पार्टी जैसा नेतृत्व मौजूद था जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त थी। रूस की समाजवादी क्रांति ने उनके अंतर्राष्ट्रीय बनाने के काम को सुगम बना दिया था। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के भंग होने और स्तालिन की मौत के बाद माओ के नेतृत्व में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन को एक हद तक नेतृत्व प्रदान कर सकी थी।

आज यह सही है कि अलग–अलग देशों में कम्युनिस्ट संगठन मौजूद हैं। वे मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा की हिफाजत कर रहे हैं। लेकिन वे आमतौर पर ऐसी स्थिति में हैं जहां कोई स्थापित नेतृत्व नहीं है। अधिकांश देशों में वे कमोबेश निम्न स्तर पर मजदूर वर्ग को संगठित कर रहे हैं। एक देश के भीतर अनेक कम्युनिस्ट संगठन मौजूद हैं। अधिकांश संगठन कमोबेश पंथ की अवस्था में हैं। जैसा कि मार्क्स ने कहा है कि वास्तविक मजदूर आंदोलन और समाजवादी पंथों के बीच विलोमानुपात होता है। वास्तविक मजदूर आंदोलन से लगभग अलग–थलग पड़े इन समाजवादी पंथों की स्थिति में पड़े कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों का नया अंतर्राष्ट्रीय तब तक नहीं बन सकता, जब तक कि ये वास्तविक मजदूर आंदोलन के नेता के बतौर न उभर आयें। जिस दौरान वास्तविक मजदूर आन्दोलन के नेता के तौर पर पार्टियां उभरकर आयेंगी, उस दौरान ही नये इंटरनेशनल के बनने की प्रक्रिया जन्म ले सकती है। लाजिमी तौर पर नया इंटरनेशनल भी विचारधारात्मक संघर्ष के दौरान संशोधनवाद और अन्य तमाम विजातीय प्रवृत्तियों को पराजित करके ही अस्तित्व में आ सकेगा। यह किसी तरह के सैद्धान्तिक समझौतों या समायोजनों से कभी भी अस्तित्व में नहीं आयेगा।

तब फिर आज की स्थिति में क्या किया जाय? रिम अभी से अपने को नये अंतर्राष्ट्रीय के भ्रूण रूप में चित्रित करता है। रिम की ऐसी स्थिति नहीं है कि उसे नये अंतर्राष्ट्रीय के भ्रूण के रूप में देखा जाय। रिम में शामिल पार्टियां या संगठन अभी अपने–अपने देशों के वास्तविक मजदूर आंदोलन का प्रतिनिधित्व नहीं करते। ऐसी स्थिति में रिम विचारों के आदान–प्रदान करने और साझी समझदारी कायम करके, आम सहमति के मुद्दों पर साझीदार पार्टियों व संगठनों के एक मंच के बतौर ही कारगर ढंग से काम कर सकता है और नये इंटरनेशनल के बनने की परिस्थितियां उत्पन्न होने पर वह नये इंटरनेशनल बनाने की पहलकदमी ले सकता है। लेकिन रिम अभी से अपने को मंच के बजाय इंटरनेशनल के भ्रूण रूप में देख

रहा है। इंटरनेशनल के भ्रूण रूप में देखने का मतलब है कि रिम अभी से जनवादी–केन्द्रीयता के उसूलों पर काम कर रहा है और रिम की कमेटी एक नेतृत्वकारी निकाय है। जबकि रिम में शामिल अधिकांश संगठनों की स्थिति ऐसी नहीं है कि वे वास्तविक मजदूर आंदोलन के प्रतिनिधि हों। ऐसी स्थिति में रिम परस्पर सलाह–मशविरे तथा सहयोग का मंच ही हो सकता है।

रिम की यह अवस्थिति ठीक है कि आगे बनने वाला इंटरनेशनल जनवादी–केन्द्रीयता के सिद्धान्त पर आधारित होगा। आज दुनिया के तमाम देशों में मजदूर वर्ग एक शक्ति के बतौर मौजूद है। ऐसी हालत में दुनिया भर में समाजवादी आंदोलन के लिए और ज्यादा मजबूत जमीन मौजूद है। नये इंटरनेशनल के जनवादी–केन्द्रीयता के आधार पर काम करने का पहले से ज्यादा मजबूत आधार, खुद पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली ने उपलब्ध करा दिया है। एक देश के मजदूरों का दूसरे देश के मजदूरों से सम्बंध, अब पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली ने और गहरा दिया है। आज एक ही माल के उत्पादन में कई देशों के मजदूर, अपने–अपने यहां लगकर काम करते हैं। इस तरह, मजदूरों की अंतर्राष्ट्रीय एकता के बगैर, एक देश के भीतर संघर्ष के सफल होने की सम्भावनायें कम होती जा रही हैं। यह स्थिति नये अंतर्राष्ट्रीय की जरूरत का और ज्यादा तल्खी से एहसास कराती है।

इसी प्रकार, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के आकलन, कम्युनिस्ट आंदोलन के इतिहास के मूल्यांकन और विभिन्न मसलों पर जब तक रिम की अवस्थितियां दुरुस्त नहीं होती और 1963 की 'आम दिशा' के बाद की दुनिया में आये परिवर्तनों को ध्यान में रखकर एक आम दिशा तय करने में एक साझी राय तक नहीं पहुंचा जाता, तब तक रिम कारगर भूमिका नहीं निभा सकेगा।

□ □ □